अपनी दुनिया

[रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत]

अनुवादक:--

कामता प्रसाद श्रीवास्तव

श्री गान्धी ग्रन्थागार

सी ७।१४० सेनपुरा,

बनारस

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। लेखक ने इसमें पंचभूतों को पात्र बनाकर नवमानववाद का दर्शन प्रस्तुत कर लड़खड़ाती मानवता को इस क्रूर समाज की गहरी खाई में गिरने से बचाया है। ठाकुर मानववादी हैं। मानव व्यक्तित्व के गौरव पर इनका आग्रह है और इसकी प्रगति पर अगाध विश्वास।

लेखक के मतानुसार मानव का अवतरण प्राकृतिक विकास की गति में एक गौरवपूर्ण घटना है। प्रकृति से दीर्घ युद्ध करते-करते ही मानव कैसे एक निरे ग्रहणशील प्राणी से विकसित होकर रचनाशील व्यक्ति बन जाता है, इसमें इसका अनुपम दिग्गदर्शन है।

इस उथल-पुथल के युग में आज सभी त्रसित हैं, अज्ञान के निविड़ अन्धकार में भटक रहे हैं, रास्ता नहीं सूझता। ऐसे समय में 'गाँधी ग्रन्थागार' ने हिन्दी भाषा में इस पुस्तक का प्रकाशन कर नवमानववाद की एक कभी न बुझनेवाली मशाल जलायी है।

—अनुवादक

अपनी दुनिया

पाठकों की जानकारी एवम् रचना की सुविधा के लिये इस पुस्तक के पात्रों का नामकरण करना अत्यन्त अवश्यक है। हम इन्हें श्रीमान पृथ्वीराज, श्रीमान पवन देव, श्रीमान् गगन जी, श्रीमती निर्झरिणी देवी एवम् श्रीमती प्रकाशवती देवी के नाम से सम्बोधित करेंगे।

नामकरण के पश्चात् व्यक्ति बदल जाता है। जिस प्रकार तलवार के लिये उतने ही बड़े मियान की आवश्यकता होती है, जितनी बड़ी वह होती है। उसी प्रकार व्यक्ति विशेष का उसके गुणों के अनुकूल नाम करण करना बहुत कठिन है, खास कर उपरोक्त पात्रों के लिये तो और भी कठिन है। किन्तु मैं इस उलझन में फंसना नहीं चाहता, क्योंकि मैं किसी न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ हूं। हां, पाठकों को विश्वास दिलाता हूं कि मैं जो कुछ कहूंगा, सत्य कहूंगा और वह सत्य सुन्दर सजी सजाई भाषा में व्यक्त करूंगा।

अब पात्रों का परिचय नीचे दे रहा हूं :—

श्रीमान् पृथ्वीराज— इनका आकार हम लोगों में सब से भारी है। बहुत सी बातों में इनका विचार भी अचल एवम् अटल है। जिस वस्तु की आकृति इन्हें प्रत्यक्ष रूप से दृढ़ दिखाई देती है और जो समय पड़ने पर काम में लाई जा सकती है उसी को ये सत्य मानते हैं। इसके सिवा यदि कहीं और भी सत्य हो तो भी उसे ये सत्य नहीं मानते, न उससे किसी तरह का सम्पर्क रखना चाहते हैं। इनका कहना है कि जितने भी

ज्ञान आवश्यक हैं उन्हीं का बोझ उठाना कठिन है। और यह बोझ प्रति दिन भारी होता चला जा रहा है। साथ ही शिक्षा की कठिनाई बढ़ती ही जा रही है।

पुराने ज़माने में जब विज्ञान की इतनी उन्नति नहीं हुई थी और ऐसे विषयों की कमी थी, जिनका सीखना मनुष्य के लिए जरूरी हो, उस समय विलासयुक्त शिक्षा के लिए काफी समय मिलता था। परन्तु आज-कल तो ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के कारण उतना समय ही नहीं मिल सकता। छोटे-छोटे बच्चों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कपड़ों और गहनों से आभूषित करने में कोई हानि नहीं, क्योंकि उनके पास खाने-पीने के अलावा दूसरा काम नहीं; पर वयस्कों को पैरों में पैजनी, हाथ में कंकण, सिर पर मोर का पंख पहना कर छोड़ देने से उनका काम कैसे चल सकता है? उन्हें तो काम में लगे रहना होगा। उन्हें तो कमर कस कर काम करने के लिए सदा तैयार रहना होगा। अतः आज कल सभ्यता के सामने अलंकार फीका पड़ता जाता है। उन्नति का तो अर्थ ही आवश्यक वस्तु का संचय और अनावश्यक का परित्याग है।

पृथ्वीराज के इस अकाट्य तर्क का श्रीमती निर्झरिणी कोई उत्तर नहीं दे सकती हैं, मधुर कलकल नाद और निपुण नर्तकी की तरह अंगूरी लताओं के सदृश्य झूमती हुई कहती हैं कि नहीं, नहीं इस बात में तनिक भी सचाई नहीं। यह मेरे मन में नहीं जँचती। इसकी सचाई में विश्वास ही नहीं किया जा सकता। उनके मुँह से सदा नहीं-नहीं की ध्वनि निकलती है। कोई अन्य युक्ति-तर्क नहीं। केवल एक मधुर संगीत की ध्वनि—एक विनीतपूर्ण स्वर सुनाई देता है और कुछ नहीं। अना-वश्यक को पसन्द करती हूँ, अतः अनावश्यक भी आवश्यक है। अनाव-श्यक हमारा कोई उपकार नहीं करता, पर कभी-कभी हमारा अनुराग,

हमारी दया और हमारे भीतर आत्मविसर्जन को उत्तेजित कर देता है। क्या संसार में इस अनुराग की आवश्यकता नहीं है? श्रीमती निर्झरेणी के इस अनुनय-धारा में श्रीमान् पृथ्वीराज एकदम तिरोहित हो जाते हैं।

श्रीमती प्रकाशवती तलवार की धार की भांति चमक उठती हैं। और तीखे स्वर में पृथ्वीराज से कहती हैं—"वाह! तुम लोगों को इस बात की ऐंठ है कि इस पृथ्वी पर जो कुछ होता है, सिर्फ तुम्हारी ही कृपा से होता है? तुम जिसे निरर्थक समझकर पृथक कर देना चाहते हो, वह भी मेरे काम आ सकता है। तुम अपने विश्वास, शिक्षा, आचार-व्यवहार, बातचीत और शरीर से अलंकार मात्र को ही अलग कर देना चाहते हो। सभ्यता की खींचतान के कारण स्थान और समय का बड़ा ही अभाव हो गया है। किन्तु अलंकारों को निकाल देने पर हमारे जो चिरंतन कार्य हैं, वे एक तरह से ठप ही हो जायँगे। हमें तो गृहस्थी का संचालन नाना प्रकार की रोचक कहानियों, मीठी बातों, रसभरी चालों और कितनी ही विषयों का प्रश्रय लेकर करना पड़ता है। हम मृदु वचन बोलती हैं, मधुर हँसती हैं, शर्म से काम बना लेती हैं, जहां जो सुन्दर पहनावा दिखाई देता है, वहां वही पहनावा पहन लेती हैं। सौन्दर्य बढ़ाने वाला काम करती हैं। और अपने इन्हीं कामों से हम तुम लोगों का स्त्री-धर्म—मातृ-कर्तव्य पूरा कर सकती हैं। यदि सचमुच सभ्यता की चोट से डर कर ज्ञान-विज्ञान का परित्याग कर दिया जाय, तो मैं देखना चाहती हूँ कि इन अनाथ बच्चों और पुरुषों की क्या दशा होगी।

श्रीमान् पवनदेव ने तो इन सब बातों को एक बारगी हँसी में उड़ा दिया और आप फरमाने लगे—पृथ्वीराज की बात ही छोड़ दो, करवट बदलने, पीछे हटने, हिलने-डोलने ही से उनके मानसिक राज में एक ऐसा भूडोल आ जाता है कि बेचारे का अथक प्रयास द्वारा निर्मित भवन

अचानक फटकर गिर जाता है। इसीलिए उनका यह कथन है कि देव-ताओं से लेकर कोड़े-मकोड़े तक सभी मिट्टी से पैदा हुए हैं, क्योंकि अगर मिट्टी के अतिरिक्त किसी अन्य चीज का अस्तित्व मान लिया जाय, तो मिट्टी से दूर भी अपने विचार को सरपट भगाना पड़ेगा। उन्हें यह बात समझा देनी जरूरी है कि जड़ और चेतन के सम्बन्ध में ही संसार की सीमा नहीं है, अपितु चेतन के साथ चेतन का सम्बन्ध ही संसार का असली सम्बन्ध है। अतः वस्तु विज्ञान की जानकारी कितना ही हासिल क्यों न करो, वह लोक व्यवहार की शिक्षा में तनिक भी मदद नहीं कर सकता। परन्तु जो जीवन का आभूषण है, जिनसे सौन्दर्य, काव्य और मिठास की उत्पत्ति है, वे असल में मनुष्य के बीच ठीक सम्बन्ध जोड़ते हैं, एक दूसरे के राह का काँटा दूर कर, आपसी स्पर्धा को समाप्त कर उनके ज्ञान-चक्षु खोल देते हैं और जीवन को मर्त्य से स्वर्ग तक प्रसारित कर देते हैं।

श्रीमान् गगन कुछ क्षण आँखें बन्द कर के बोले—यदि सही-सही पूछो तो जो अनावश्यक है, वही सबसे अधिक आवश्यक है। जिससे उदरपूर्ति हो, स्वार्थ सधे, कुछ काम निकले, मनुष्य हमेशा उसे घृणा की दृष्टि से देखता है। इसोलिए ऋषि-मुनियों ने भूख-प्यास, सरदी-गर्मी को भूलकर स्वतन्त्रता का प्रचार किया है। किसी बाहरी चीज का बिल्कुल प्रयोजनीय होना जीव और आत्मा दोनों के लिए अपमान जनक है। यदि इस 'अत्यावश्यक' को ही मानव-सभ्यता की राजगद्दी पर बैठा दिया जाय, तो उस सभ्यता को हम सबसे श्रेष्ठ सभ्यता नहीं कहेंगे।

श्रीमान् गगन जी जो कहते हैं, उस पर कोई ध्यान नहीं देत। कहीं उनके हृदय पर आघात न पहुँचे, इस भय से निर्झरिणी यद्यपि मन लगाकर सुनती है, पर भीतर ही भीतर वह भी इस बेचारे को पागल समझकर उस

पर दया करती हैं। किन्तु यह श्रीमती प्रकाशवती के सहन के बिल्कुल बाहर हैं और वे व्यग्र होकर बीच ही में बातचीत के क्रम को बदलना चाहती हैं। उनकी बात वह भलीभाँति समझ नहीं सकतीं, इसलिए उन पर प्रकाशवती का विशेष क्रोध है।

परन्तु श्रीमान् गगन जी की बात मैं कभी हवा नहीं कर सकता। मैंने उनसे कहा—ऋषियों ने अपनी घोर तपस्या से जो काम अपने निजी स्वार्थ के लिए किये थे, विज्ञान उन्हीं को आम जनता की भलाई के लिए करना चाहता है। विज्ञान मनुष्य के प्रति जड़ के जो सैकड़ों अत्याचार होते रहते हैं, उन्हीं को दूर करना चाहता है। अतः सदा के लिए जड़ के बन्धन से त्राण पाकर स्वाधीन आध्यात्मिक सभ्यता तक पहुँचने के लिए एक वैज्ञानिकसाधना की बिल्कुल आवश्यकता है।

पृथ्वीराज जिस प्रकार अपने प्रतिद्वन्द्वी पक्ष के किसी भी युक्ति का खंडन करना बिल्कुल बेकार समझते हैं, गगन भी उसी प्रकार केवल एक बात कहकर मौन धारण कर जाते हैं। फिर चाहे कोई लाख कहे, उनका मौन भंग नहीं होता। मेरा शब्द भी उनके कान तक नहीं पहुँच सका। पृथ्वीराज जहाँ बैठे थे, वहीं अटल अडिग होकर बैठे रहे। गगन भी अपनी गंभीरता में ही समाहित हो रहे।

यही तो मेरा और मेरे पाँच पात्रों का सम्प्रदाय है। इनमें से श्रीमती प्रकाशवती ने एक दिन तड़के मुझसे कहा—तुम अपने पास एक डायरी क्यों नहीं रखते?

स्त्रियों का मस्तिष्क अन्ध-संस्कारों से ओत-प्रोत है। श्रीमती प्रकाशवती के दिमाग में यह एक संस्कार था, कि मैं कोई अदना आदमी नहीं हूँ। कहना न होगा कि मैं भी कभी इस संस्कार को दूर करने का कोई उपाय नहीं करता।

पवनदेव ने कोमल भाव से मेरी पीठ को थपथपाकर कहा—"लिखो न कुछ"। पृथ्वीराज और गगन चुप ही रहे। मैंने कहा—डायरी लिखना एक बड़ा भारी दोष है। श्रीमती प्रकाशवती व्यग्र होकर बोल उठीं—होने दो, तुम लिखो तो सही।

निर्झरिणी देवी मीठे शब्दों में बोलीं—क्या दोष है सुनाओ तो सही। मैंने उत्तर दिया—

डायरी एक बनावटी जीवन है, लेकिन जब हम उसे लिखते हैं, तब वह हमारे प्राकृतिक जीवन पर अपना आधिपत्य जमा लेता है। एक आदमी के भीतर हजारों भाग हैं, उन्हीं को बचाकर घर बार चलाना कठिन हो जाता है, फिर बाहर से एक स्वयं नकली बला एकत्रित करना कितनी भारी मूर्खता है।

अचानक गगन बोल उठे—इसीलिए तो तत्वज्ञानियों द्वारा सभी कर्मों का निषेध किया गया है, क्योंकि हरेक कर्म से ही कोई-न-कोई सृष्टि होती है। हम जितना ही भोग करने के विषय में सोचते हैं, उतना ही काम में फँसते जाते हैं। इसलिए आत्मा को यदि शुद्ध रखना चाहते हो तो सभी काम छोड़ दो।

मैंने गगन को उत्तर न देकर कहा—मैं अपने को खण्ड-खण्ड करके बांटना नहीं चाहता। मेरे भीतर एक आत्मा तरह-तरह की चिन्ताओं और कर्मों की माला बना-बनाकर प्रतिदिन संसार में एक नया नियम—एक नया जीवन-स्रोत बहाती है। यदि डायरी लिखने के काम भी साथ ही साथ जारी रहे तो उस जीवन को तोड़-मरोड़ कर एक नया जीवन खड़ा कर देना पड़ेगा।

पृथ्वीराज हँस कर बोले—डायरी को दूसरा जीवन क्यों कहते हो। इसका भेद मेरी समझ में नहीं आ सका।

मैंने कहा—मेरा कथन है कि जीवन एक ओर रास्ता पकड़े चला जा रहा था। यदि तुम वैसी ही एक समानान्तर रेखा खींचे चलो, तो एक ऐसी अवस्था आने की सम्भावना है, जब यह समझ सकना कठिन हो जायगा कि तुम्हारी लेखनी तुम्हारे जीवन के अनुरूप रेखा खींचती चली जा रही है। दोनों रेखाओं में कौन असली और कौन नकली है, यह स्थिर करना मुश्किल हो जायगा। जीवन की गति स्वभावतः रहस्यपूर्ण है, उसमें आत्मखंडन और पूर्वा पर का असामंजस्य रहते हैं। लेकिन लेखनी स्वभाव से ही एक निर्दिष्ट पथ पर चलना चाहती है। वह सभी असामंजस्यों को समान कर एक साधारण रेखा खींच सकती है। वह एक घटना को देखकर उससे एक युक्ति संगत सिद्धान्त पर पहुँचे बिना रह नहीं सकती।

इस बात को समझाने में मेरी व्याकुलता देखकर निर्झरिणी ने दया-पूर्वक कहा—मैं जानती हूँ कि तुम क्या कहना चाहते हो। स्वभावतः हमारे बड़े प्राणी अपने गुप्त-निर्माणालय में बैठ एक अपूर्व नियम के अनुसार हमारे जीवन को बनाते हैं, परन्तु डायरी लिखने से जीवन-गठन का बोझ दो मनुष्यों पर देना पड़ता है। बहुत अंशों में डायरी के अनुसार जीवन होता है और कितने ही अंशों में तो डायरी जीवन के अनुसार।

निर्झरिणी मेरी बातें इतने ध्यान से सुनती थीं, मानों चेष्टापूर्वक मेरी बातों को समझने की कोशिश कर रही हों, पर अचानक ज्ञात हुआ कि बहुत पहले ही उन्हों ने मेरी बात समझ ली है।

मैंने कहा—यही अच्छा है।

प्रकाशवती बोलीं—इसमें दोष क्या है?

मैंने कहा—इसे तो कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है, जो आदमी

साहित्य से प्रेम रखता है, वही मेरी बात समझ सकता है। साहित्य-व्यवसायी को अपने अन्दर से तरह-तरह के भाव और आदमी बाहर निकालने पड़ते हैं। जैसे कुशल माली विभिन्न प्रकार का फरमायशी माला बनाता है और एक ही जाति के फूल से तरह-तरह के फूल पैदा करता है—किसी का पत्ता बड़ा होता है तो किसी का रंग ही अजीब होता है और गन्ध में भी विभिन्नता आ जाती है। इसीप्रकार साहित्य का व्यापारी अपने मनसे भिन्न भिन्न प्रकार का भाव बाहर निकालता है उन भावों को स्वतंत्र और सम्पूर्ण रूप में प्रकट करता है। वह ज्योंही उन्हें साफ-साफ प्रकट करता है, वे अमर हो जाते हैं। इस तरह साहित्य-व्यापारी के मन में बहुत से स्वच्छन्द प्राणियों का एक गाँव ही आबाद हो जाता है। उसके जीवन में ऐक्य नहीं रह जाता। धीरे धीरे वह सैकड़ों भागों में विभाजित हो जाता है। साहित्य-व्यापारी द्वारा जीवन पाये हुए मनोभावों के ये दल दुनिया में चारों तरफ अपनी बाँह फैलाते जाते हैं। सभी बातों में उनका कौतूहल बराबर रहता है। दुनिया का रहस्य उन्हें सैकड़ों तरफ खींच ले जाता है। सौन्दर्य अपने वेदना पाश में बाँध लेता है। दुःख को भी वे अपने खेल का साथी बना लेते हैं। मौत की भी एक बार जाँच करना चाहते हैं। नवीन कौतूहलों से बच्चों की भाँति सभी वस्तुवों को स्पर्श करना और सूंघना चाहते हैं। किसी के दबाव में रहना नहीं चाहते। जैसे एक ही दीये में अनेकों बत्तियाँ लगाकर जलाने से तेल थोड़ी ही देर में समाप्त हो जाता है, वैसे ही इन मनोभावों के कारण आदमी का जीवन द्रुतवेग से भस्मीभूत हो जाता है। एक प्रकृति के भीतर इतने जीवित विकासों के सख्त विरोध से विशृंखलता पैदा हो जाती है।

प्रकाशवती ने मुस्कराते हुए पूछा—अपने को इस तरह विचित्र

और स्वच्छन्दरूप से प्रकट करके क्या वह आनन्द नहीं पाता?

मैंने कहा—निर्माण में एक विचित्र आनन्द है, परंन्तु कोई मनुष्य हमेशा निर्माण-कार्य में लगा नहीं रह सकता, उसकी शक्ति की सीमा है, और इस दुनिया में लिप्त रहकर उससे अपना जीवन-यात्रा तय करना पड़ता है। इस जीवन-यात्रा में उसे अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़तीं हैं। सात फुट की बाँसुरी वाद्य-यंत्र की दृष्टि से अच्छी है। क्योंकि फूंकने से बजने लगती है, किन्तु गली-कूचे में छेद रहित बाँस की लाठी ही जरूरी होती है, क्योंकि अक्सर उस पर जिन्दगी निर्भर रहती है।

पवन ने कहा—दुर्भाग्यवश बाँस के टुकड़े के समान मनुष्य के काम करने का विभाग नहीं है। मनुष्य को बंशी और लाठी दोनों ही का काम करना पड़ता है। भिन्न-भिन्न परिस्थिति में भिन्न-भिन्न अभिनय करना पड़ता है। पर भाई, तुम लोग अच्छे हो। तुममें से कोई बंशी है तो कोई लाठी, परन्तु मैं तो केवल हवा हूं। मुझमें गाने के सभी भीतरी उपकरण हैं, सिर्फ वाह्य आकृति का वह यंत्र ही नहीं है, जिससे राग रागिनी निकलती है।

प्रकाशवती ने कहा—मनुष्य-जीवन में हमारी बहुत सी चीजें व्यर्थ बरबाद होती हैं। कितनी फिक्र, कितने भाव और कितनी घटनाएँ सुख-दुख की लहर उठाकर हमें सदा विचलित करती रहती हैं। यदि हम उन्हें लिपिवद्ध कर रखें, तो हमारे जीवन का बहुत भाग अपने पास रहता है। चाहे सुख हो या दुःख, हमारा दिल इसका संपूर्ण परिहार करना नहीं चाहता।

इस विषय में मुझे बहुत सी बातें कहनी थीं। किन्तु यह देखकर कि श्रीमती निर्झरिणी कुछ कहने के लिए व्यग्र हो रही हैं, मैंने अपनी बात वहीं पर बन्द कर दी। यदि इस समय मैं बात की रफ्तार जारी

रखता हूँ तो वह शीघ्र अपनी बात बन्द कर देतीं। अतः मैंने मौन धारण कर लिया। कुछ क्षण बाद वह बोलीं—क्या जाने भाई, मैं तो इसी को सबसे आपत्तिजनक समझती हूँ यदि। हम अपने दैनिक अनुभव को लिपिवद्ध करते जाँय तो उसका ठीक परिमाण नहीं रह सकता। एक सामान्य कारण से हम लोगों के अनेकों राग-द्वेष और सुख-दुःख बहुत अकाय दीखने लगते हैं। और जिसे हम बराबर सहन करते आते हैं, वही किसी विशेष कारण वश असत्य हो जाता है। किसी समय वास्तव में जो अपराध नहीं है, वह भी अपराध प्रतीत होने लगता है। अनेक बार हम चंगे न रहने के कारण दूसरों के साथ अन्याय कर बैठते हैं, पर काल-क्रम से ये दुःख, अन्याय और अपराध भूल जाते हैं। इस तरह धीरे-धीरे अत्याचार दूर हो जाता है और केवल साधारण बातें रह जाती हैं। उसी पर हमारा वास्तविक अधिकार है। हम डायरी में नियमितता बरत कर एक कृत्रिम उपाय से अपने जीवन की प्रत्येक छोटी-छोटी बातों की लड़ी बना देते हैं। और कितनी ही तुच्छ घटनाओं को बढ़ाने की चेष्टाकर उन्हें नष्ट कर डालते हैं।

अचानक श्रीमती निर्झरिणी सचेत हुईं। उनकी बातों में बहुत आवेग आ गया था। शर्म से उनका चेहरा लाल हो गया। जरा घुम कर बोलीं—क्या जानूँ, मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती। मैं समझने में भी तो भूल कर सकती हूँ।

प्रकाशवती निःसंकोची थीं। वह बात करने में भी बेजोड़ थीं। उन्हें तत्काल उत्तर देने के लिए तैयार देखकर मैंने कहा—तुमने ठीक समझा है। मैं भी वही कहने वाला था, परन्तु मैं तुम्हारी तरह कह सकता था कि नहीं, इसमें शक है। श्रीमती प्रकाशवती को यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि अधिक बढ़ने की चेष्टा करने से घट जाना पड़ता है। आमदनी होने

पर ही खर्चना पड़ता है। अपने जीवन का बहुत भाग भूलकर गँवाकर—फेंककर हम आगे बढ़ने में समर्थ होते हैं। जरा-सी चीज को एकत्रित करने और हरेक चीथड़ों की गठरी बनाकर रखने से क्या लाभ होगा? जीवन के प्रतिक्षण को समीप खींच लाने से क्या काम सिद्ध होगा? छोटी-छोटी बातों, भावों और घटनाओं के ऊपर जो मनुष्य आधिपत्य जमाए रहना चाहता है, उसके समान दूसरा अभागा इस अवनीतल पर नहीं है।

प्रकाशवती बनावटी हँसी हँसते हुए बोलीं—मैंने भूल की कि तुम्हें डायरी लिखने के लिए कहा। ऐसी भूल मैं फिर कभी न करूँगी।

पवन यह बात सुनकर बोल उठे—ऐसी बात मुँह से क्यों निकालती हो? अपराध स्वीकार करने के समान दुनिया में दूसरा भ्रम नहीं। लोगों का खयाल है कि दोष स्वीकार करने से विचारक अपराध को हल्की नज़र से देखता है, पर बात ऐसी नहीं है। दूसरे किसी की भर्त्सना करनेका सुख एक दुर्लभ सुख है। तुम अपने दोष को जितना ही नमक मिर्च लगाकर कहते हो, महान विचारक उसे उतना ही बलपूर्वक अपनाकर सुखी होता है। मैं सोच रहा था कि कौन मार्ग अपनाऊँ, निदान मैंने डायरी लिखना निश्चय किया।

मैंने कहा—मैं भी तत्पर हूँ, पर मैं अपनी बात डायरी में नहीं लिखूँगा। मैं ऐसी बात दर्ज करूँगा जो हम सबकी हो। वही बात जिसकी हम प्रति दिन आलोचना करते हैं।

श्रीमती निर्झरिणी कुछ सशंकित हो गयीं। पवन ने हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हुए कहा—यदि सभी बातें नोट करनी हों, तो कहिए हम घर से बातें याद करके आया करें और बात के दौरान में भूल जाने पर फिर घर दौड़ें! इसका फल यह होगा कि बातें तो घट जायँगी, पर

मिहनत बहुत बढ़ जायगी। यदि तुम बिल्कुल सत्यहरिश्चन्द्र ही बनना स्वीकार करो, तो मैं तुम्हारे दल को अलविदा कर के निकल भागूँगा।

मैंने कहा—नहीं जनाब! मैं मित्रों का ही अनुरोध रखूँगा, सत्य का नहीं। तुम बेफिक्र रहो, मैं बातें बना लूँगा।

श्रीमान् पृथ्वीराज ने आँखें तरेर कर कहा—यह तो और भी बुरा होगा। मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि तुम्हारे हाथ में लेखनी पड़ने से जितनी युक्तिरहित बातें होंगी, वह हम लोगों से कहलाओगे और जो दलील अकाट्य होंगी, तुम स्वयं अपने मुख से निकालोगे।

मैंने कहा—जिसके साथ दलील में हम हार जाते हैं, कलम द्वारा हम उसका बदला लेकर छोड़ते हैं। मैं भविष्यवाणी कर देता हूँ कि आज तक हम तुम्हारे जितने उपद्रव सहन करते रहे हैं, अब उनका बदला लेंगे।

संतोषी पृथ्वीराज ने कहा—तथास्तु। गगन कुछ न बोले। कुछ क्षण तक हँसते रहे। उनकी गंभीरता आज तक मेरी समझ में नहीं आयी।

सौन्दर्य का सम्बन्ध

वर्षा ऋतु के कारण नदी का पानी उपट कर खेतों में फैल गया है। धान के खेत डूब गये हैं और हमारी नौका डूबे हुए धानों के ऊपर से सों-सों शब्द करती चली जा रही है।

समीप में ऊँची ज़मीन पर एकतल्ला मकान, जिसके चारों तरफ चहार दीवारी है, दिखाई देता है। इसके पास दो चार टीन के घर, केले, कटहल और आम के पेड़ और बाँस की कोठ है।

वहीं से शहनाई की धीमी आवाज़ आ रही है। शहनाई बड़ी

बे-सुरी है। शहनाई से देहाती गीत बार-बार गाई जा रही है। ढोलक-झाल की आवाज आकाश को सिर पर उठाने का दावा करती है।

श्रीमती निर्झरिणी ने समझा—पासही में कहीं शादी का समारोह है। उसने नाटकीय ढंग से खिड़की से सिर निकाल पेड़ों से ढके हुए किनारे की ओर उत्सुकता से भरी नज़र डाली।

घाट पर बँधी हुई नाव के माँझी से मैंने पूछा—क्यों जी, वहाँ बाजा क्यों बज रहा है?

माँझी ने कहा—आज ज़मींदार का पुण्याह है।

पुण्याह का अर्थ विवाह नहीं है। अतः यह सुनकर निर्झरिणी देवी के चेहरे पर मायूसी छा गयी। वह पेड़ों की छाया में ग्रामीण वर वधू को देखने के लिए उत्सुक थीं।

मैंने कहा—पुण्याह का अर्थ ज़मींदारों के सम्वत का पहला दिन है। आज प्रजा कुछ न कुछ मालगुजारी ले जाकर छावनी में वर वेशधारी कारिन्दे को देगी। यह रकम उस दिन गिनना मना है। यह प्रथा वैसी ही है, जैसे वृक्ष आनन्द पूर्वक वसन्त को पुष्पांजलि भेंट करते हैं।

प्रकाशवती ने कहा—मालगुजारी अदा करने के अवसर पर बाजे-गाजे की क्या जरूरत है?

श्रीमान् पृथ्वीराज ने कहा—प्रजा तो बलिदान का बकरा है। बकरे को बलि देते समय क्या गाजे-बाजे नहीं बजते हैं? आज मालगुजारी देवी के समीप बलिदान का बाजा बज रहा है।

मैंने कहा—ऐसा ख़याल तुम लोगों का हो सकता है; किन्तु मेरे खयाल में तो यदि देना ही हो, तो एकदम पशु-हत्या की तरह न देकर उसमें जितना ही ऊँचा भाव रखा जाय, उतना ही अच्छा है।

श्रीमान् पृथ्वीराज ने कहा—मैं तो इस बात का कायल हूँ कि

जिसका जो सत्यभाव है, उसी पर डटे रहना अच्छा है। अनेक बार खोटे काम के अन्दर ऊँचा भाव भरकर हम ऊँचे भाव का भी महत्व फीका कर देते हैं।

मैंने कहा—भाव की सचाई-झुठाई अधिकांश हमारी चिन्ता पर निर्भर करती है। मैं वर्षा ऋतु की लबालब नदी को एक नजर से देखता हूँ, और माँझी उसको दूसरी नजर से देखता है। मैं कभी भी यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि मेरी नजर जौ भर भी भ्रमयुक्त है।

पवन ने कहा—बहुतेरे आदमी भाव की सचाई-झुठाई उसके गुरुत्व के परिमाण से मापते हैं। जो जिस परिमाण में मोटा है, वह उसी परिमाण में सत्य है। सुन्दरता की अपेक्षा धूल, स्नेह की अपेक्षा स्वार्थ और प्रेम की अपेक्षा क्षुधा सत्य है।

मैंने कहा—तौभी मनुष्य काफी समय से इन भरी चीजों की अवहेलना अनादर कर रहा है। धूल को ढँक रखता हैं, स्वार्थ को धिक्कारता है, और क्षुधा को चुपके से शान्त कर देता है। मलिनता संसार की सबसे प्राचीन सृष्टि है। कूड़ा-करकट की अपेक्षा पुरानी चीजें ही मिलनी दुष्कर हैं। अतः क्या वही सबसे सची है जो लक्ष्मीरूपी गृहिणी उसे रोज धोती है, उसी को झूठ कहकर हवा कर दिया जायगा?

श्रीमान् पृथ्वीराज ने कहा—भाई, तुम लोग इतने भयभीत क्यों हो गये? मैं तुम्हारे उस अन्तःपुर की दीवार को बारूद से उड़ाने नहीं आया हूँ; पर जरा इस बातको ठंढे दिल से विचारो तो सही, कि पुण्याह के अवसर पर इस गर्दभ स्वर युक्त शहनाई को बजाने से संसार का कौनसा सुधार होग? संगीत कलाकी सुधार हो तो खुदा ही खैर करे।

पवन ने कहा—और कुछ तो नहीं, इस गाजे-बाजे का अर्थ सिर्फ

नवीन वर्ष में पदार्पण करना है। सालभर के दुःखों को एक जगह बैठकर भुला देना ही इस पुण्याह का उद्देश्य है।

संसार के कोलाहल में समय-समय पर आनन्द के सुर मिला देने से थोड़े क्षण के लिए तो पृथ्वी की शोभा लौट आती है। गाँव के बाज़ार में घर की शोभा आ पहुँचती है। बिक्री-खरीद, लेन-देन की शुष्क कठोरता पर भलाई और प्रेम की स्निग्ध चाँदनी अपनी छटा बिखराकर उसकी नीरव कठोरता दूर कर देती है। इस पृथ्वी पर सभी क्रिया चीत्कार-स्वर में होती है। और जो होना मुनासिब है, वह कभी-कभी बीच-बीच में आकर सुन्दर सुर भरने लगता है। उस वक्त यह होता है कि सभी चीत्कार युक्त स्वर मधुर होकर इस सुर में शामिल हो जाते हैं—पुण्याह ऐसे ही संगीतका एक दिन है।

मैंने कहा—उत्सव का उद्देश्य यही है। मनुष्य किसी-किसी दिन अपने काम के क्रम को भङ्ग कर अपने मन को आराम पहुँचा लेता है। प्रतिदिन पैदा करता है। एक दिन व्यय कर डालता है। प्रतिदिन द्वार बंद किये रहता है। एक दिन खोल देता है। प्रतिदिन घर का वही स्वामी रहता है। एक दिन वह सबका सेवक बन जाता है। वही दिन हर्ष एवं मंगल का दिन है। वही दिन उत्सव दिवस कहलाता है। वही आदर्श दिन है। वह दिन बेजोड़ है। उसके सामने सभी वस्तुएँ हेय हैं। फूल की माला और स्फटिक के दीप भी—उसकी तुलना नहीं कर सकते। उसमें सारी सुषमा प्रविष्ट है। ऐसा लगता है कि हम आपस में हृदय से हृदय मिलाकर मंगल मनाने आए हैं। परन्तु ग़रीबी के कारण हम आनन्द नहीं मना पाते। जिस दिन हम आनन्द मना लेते हैं वही हमारा प्रधान दिन है।

पवन ने कहा—संसार में ग़रीबी का अन्त नहीं है। अगर उस

निगाह से देखते हैं तो मनुष्य का जीवन सार हीन प्रतीत होता है। मानवता का आदर्श चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो, उसे दोनों जून मुट्ठीभर अन्न की जरूरत पड़ती है। यदि पहनने के लिए कपड़ा न हो, तो वह शर्म से गड़ जाता है। मानवता उधर तो अपने को अमिट समझता है, उधर अदना चीज़ के लिए माथा पीटकर मर जाता है। चाहे जो कुछ हो, उसे प्रतिदिन सांसारिक बातों के लिए संघर्ष करना ही पड़ता है। इसके लिए वह विवश है—शर्मिन्दा है। अतः वह अपनी नीरसता को सदा ढँकने की कोशिश करता रहता है।

मैंने कहा—उसी का प्रमाण यह पुण्याह का आनन्द है। एक आदमी की ज़मीन है, और दूसरा उसे क़ीमत देता है। इस नीरसता के भीतर शरमाई जीवात्मा एक भाव-सौन्दर्य को मिला देना चाहती है दोनों के बीच एक आत्मीय नाता जोड़ देना चाहती है। वह यह साबित करना चाहती है, कि इसमें लेन-देन का बखेड़ा नहीं है, इसमें प्रेम की स्वाधीनता है। राजा-प्रजा में भाव का रिश्ता है। आदान-प्रदान हार्दिक कर्त्तव्य है। मालगुजारी के साथ राग रागिणी की साँठ-गाँठ नहीं है। कोषागार शहनाई का स्वर प्रसारित करने का स्थान नहीं है; किन्तु ज्यों ही भाव का सम्बन्ध आ जाता है, त्यों ही बंशी उसे बुलाती है, रागिणी उसे प्रकट करती है, सुन्दरता उसकी सेवा करती है। गाँव की बाँसुरी यथाशक्ति यह प्रकट करना चाहती है कि आज हमारा पुण्याह है। आज राजा-प्रजा का भरतमिलाप है। राजा की छावनी में भी मानवात्मा अपना प्रवेश-द्वार बना लेना चाहता है। वहाँ पर भी उसने एक भाव का आसन फैला रखा है।

निर्झरिणी ने सोचकर कहा—मेरा ख़याल है कि इससे केवल शरीर के सौन्दर्य की ही बढ़ोत्री नहीं होती। दर असल में दुःख का भार भी

घट जाता है। संसार में जब ऊँचाई का रहना ध्रुव सत्य है। और सृष्टि की समाप्ति के पहले वह बर्बाद नहीं होती, तब ऊँच और नीच में एक अखण्ड सम्बन्ध रहने से ऊँचाई का भार सहना आसान हो जायगा। पैरों के लिए शरीर का भार सह लेना सहज है, लेकिन बाहरी बोझ सम्भालना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।

इस उपमायुक्त बात से निर्झरिणी शर्मिन्दा हो गयी और अपराधी जैसा दीखने लगी। बहुतेरे आदमी दूसरे के भाव को उड़ाकर अपना कहते हुए नहीं शरमाते।

गगन ने कहा—जहाँ अपनी हार की सम्भावना होती है, वहाँ आदमी अपनी हीनता के दुःख निवारण के लिए भाव का सम्बन्ध जोड़ लेता है और यह सम्बन्ध सर्वत्र रहता है। दुनिया में जन्म लेकर जब मनुष्य तूफान, दावाग्नि और बाढ़ का सामना नहीं कर सका, पहाड़ जब द्वारपाल की भाँति रास्ता रोककर आसमान को चूमता हुआ खड़ा रहा और आकाश जब अमोघ इच्छा शक्ति के प्रभाव से पत्थर बरसाने लगा तब आदमी उन्हें देवता समझकर पूजने लगा। नहीं तो इस प्रकृति के साथ आदमी का सम्बन्ध कभी स्थापित नहीं हो सकता था। पहेली सदृश्य प्रकृति को जब उसने अराधना से जीत लिया तब मानवात्मा उसमें गौरव के साथ बसेरा करने लगी।

पृथ्वीराज ने कहा—निस्सन्देह किसी तरह अपनी गौरव की रक्षा के लिए मानवात्मा तरह-तरह के कौशलों को काम में लाती है। राजा जब स्वेच्छाचार करता है, किसी प्रकार प्रजा का निस्तार नहीं होता तब प्रजा उसे देवता तुल्य समझ कर अपनी हीनता के कष्ट को भूल जाने की चेष्टा करती है। मनुष्य जब शक्तिशाली और क्षमतावान होता है, तब असहाय स्त्री उसे देवता समझने पर विवश होती है और उसके

निष्ठुर अत्याचार को गौरवपूर्वक सहने की चेष्टा करती है। मैं यह बात स्वीकार करता हूँ कि आदमी में अगर इस प्रकार भाव से अभाव को ढक रखने की शक्ति न होती तो अब तक मनुष्य, मनुष्य न रह जाता बल्कि वह पशु बन गया होता।

निर्झरिणीदेवी ने आहत होकर कहा—यह बात नहीं कि मनुष्य केवल गत्यन्तर न देखकर इस तरह आत्मप्रतारणा करता है। जहाँ हमारे ही पक्ष को विजयश्री मिलती है, ऐसे स्थान में भी आत्मीयता-स्थापन की एक चेष्टा दृष्टिगोचर होती है। गाय को हमारे देश में लोग गऊमाता क्यों कहते हैं? वह तो केवल मूक, असहाय पशु ही है। उसे ताड़ना देने पर कोई उसकी ओर से बोलने वाला भी नहीं है। हम शक्तिशाली हैं, वह दुर्बल है। हम आदमी हैं, वह पशु है; परन्तु यहाँ हम इस श्रेष्ठता को गोपनीय रखने का प्रयास करते हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि हम बलवान हैं और वह निर्बल है; परन्तु हमारा अन्तःकरण इस काम का अनुमोदन नहीं करता। वह इस उपकारिणी और शान्तिमयी माता को माँ कहकर उसका दूध पीने में यथार्थ संतुष्टि पाता है। आदमी के साथ पशु का एक भावात्मक सम्बन्ध—सुघड़ाई का सम्बन्ध जोड़कर ही उसकी सृजन-चेष्टा शान्त होती है।

गगन ने गम्भीरतापूर्वक कहा—तुमने एक बड़ी बात अपने मुख से निकाल डाली है। यह सुनकर निर्झरिणी चौंक पड़ीं। उन्हें यह ज्ञात न हो सका कि उसने कोई बड़ा दोष कर डाला है। इस दोष के लिए संकुचित मन से उसने मन-ही मन क्षमा माँगी।

गगन ने कहा—आत्मा की सृजन-चेष्टा की बात के बारे में अनेकों बातें पैदा होती हैं। जैसे मकड़ी अपने जाले के बीच में रहकर चारों तरफ जाल फैलाती रहती है, वैसे ही हमारी केन्द्रीभूत आत्मा सब

लोगों के साथ आत्मीयता का बन्धन स्थापित करने में रत रहती है। वह लगातार दूर को समीप और गैरों को अपना बना लेती है। सौन्दर्य भी उसकी एक रचना है। सौन्दर्य, आत्मा और जड़ के बीच एक पुल-सदृश्य है। पदार्थ केवल पिंडमात्र है। हम उसके भीतर से खाद्य-सामग्री निकाल लेते हैं, उसमें बसेरा लेते हैं और उसकी चोट भी सहते हैं। यदि उसे हम ग़ैर समझते तो वस्तु समष्टि के समान दूसरा पराया नहीं था, पर आत्मा का काम ही ऐक्य स्थापित कराना है। वह बीच में सुघड़ाई की मदद से नाता जोड़ देती है। जड़ को सुन्दर कहने से जड़ ने भी उसके हृदय में स्थान बना लिया। बस, इसी दिन अपार हर्ष होता है। तब दोनों आनन्द से आनन्दित हो जाते हैं। सेतु-निर्माण का यह कार्य आज भी पूर्ववत् चालू है। कवियों के लिएयह गौरव की बात है। तमाम वस्तुओं के साथ हमारा जो पुराना नाता है, कविगण उसी को मजबूत बनाते हैं और नये नये नातों का सृजन करते रहते हैं। प्रचलित भाषा में जिसे जड़ कहते हैं, मैं भी उसी को जड़ कहता हूँ। जड़ की जड़ता के बारे में अगर अपनी राय प्रकट करने जाऊँ, तो उपस्थित सभा में केवल एकमात्र मैं ही सचेतन वस्तु निकलूँगा।

पवन ने गगन की बातों पर विशेष ध्यान न देकर कहा—निर्झरिणी ने केवल गाय का मिशाल पेश किया, परन्तु हमारे देश में ऐसी मिशालों की कमी नहीं है। उस दिन मैंने देखा कि एक आदमी चिलचिलाती धूप में मिट्टी के तेल का खाली कनस्तर उतार कर आह भर कर यमुना के जल में कूद पड़ा। यह दृश्य देखकर मेरे हृदय पर गहरी चोट पहुँची। उस समय हमें कितनी तृप्ति होती है जब कि कलकल नाद कर बहने वाली शीतल जल से भरपूर नदी में अपने शरीर को समर्पित कर देते हैं। जब सौन्दर्यमयी वसुन्धरा से लेकर पितामहों की झोंपड़ी तक हमारे

हृदय में ममत्वपूर्ण भाव आ जाता है। उस समय जीवन सरस हो जाता है। अवनी पर जड़-चेतन सभी में ऐसा मेल-जोल है, जो कभी अविछेद्य नहीं हो सकता। यह बात हमें आश्चर्यान्वित करने वाली नहीं जान पड़ती, क्योंकि विज्ञान के प्रकाश में आने के पहले ही हमें यह बात ज्ञात हो गयी थी। जन्मपत्री तैयार होने के बहुत पहले ही नाड़ी देखकर हमने बातें ठीक कर ली थीं। गृहस्थी का श्रीगणेश कर दिया था। हमारी भाषा में 'थैंक' का प्रतिशब्द न होने से अँग्रेज हमारी कृतज्ञता में सन्देह करते हैं, पर मैं तो इसके बिल्कुल उल्टा ही देखता हूँ। कृतज्ञता जताने के लिए हमारा हृदय हमेशा इच्छुक रहता है। जिस जाति का छात्र अपनी किताब को, लठैत अपनी लाठी को और शिल्पी अपने औज़ार को कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा से पूजता है, एक ख़ास शब्द के न होने से उस जाति को अकृतज्ञ नहीं कहा जा सकता।

मैंने कहा—कहा जा सकता है, क्योंकि हमने कृतज्ञता की सीमा का उलंघन कर दिया है। हम जो निस्संकोच होकर एक दूसरे की सहायता करते हैं, अकृतज्ञता इसका कारण नहीं है, बल्कि इसका मुख्य कारण है परस्पर स्वातन्त्र्य भाव का अपेक्षाकृत अभाव। प्रभु और नौकर, भिक्षु और दाता, अतिथि और गृहस्थ, आश्रित और आश्रय देनेवाला का सम्बन्ध स्वाभाविक है। ऐसी दशा में कृतज्ञता दिखाकर उद्धार होने का भाव किसी को नहीं आता।

गगन ने कहा—विलायती कृतज्ञता हम देवताओं के प्रति भी नहीं दिखाते। अंग्रेज 'थैंक गॉड' कहते हैं, तब उनके कहने का आशय होता है कि परमात्मा ने हमारे प्रति दया दिखाकर जब भलाई कर दी तहै तो इस उपकार को मंजूर न करके हम क्यों बर्बर बनें? कृतज्ञता

देवताओं के पद के लिए उपयुक्त नहीं होगी, अतः हम अपने देवताओं के लिए कृतज्ञता नहीं प्रकट कर सकते। ऐसी कृतज्ञता से तो हम उन्हें ठगने की चेष्टा करेंगे। इसका अर्थ यह होगा कि देवताओं ने मेरे ऊपर उपकार किए हैं, तो मैंने भी अपना फर्ज अदा कर दिया है। परन्तु स्नेह में एक प्रकार की अकृतज्ञता भी स्वातंत्र्य की कृतज्ञता से कहीं अधिक गंभीर है। इस अकृतज्ञता का किसी विदेशी भाषा में रूपान्तर नहीं हो सकता।

पृथ्वीराज ने व्यंगपूर्वक कहा—विदेशियों के प्रति जो हमारी अकृतज्ञता है, उसका भी कोई गंभीर कारण है। जड़ प्रकृति के साथ आत्मीय नाता जोड़ने के बारे में जो बातें हुई है, उसमें बहुत ही रोचकता है। और ये बातें अभी तक मेरी समझ में नहीं आईं। सभी ने तो बारी-बारी से डींग मारा है कि प्रकृति के साथ हमने भावात्मक नाता जोड़ रखे हैं। पर यूरोप ही हमारे साथ बिलगाव रखता है, उसी का व्यवहार रूखा है, पर मैं पूछता हूँ, अगर युरोपीय साहित्य का हमें ज्ञान न होता, तो क्या आज की बैठक में यह आलोचना सम्भव होती? और जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान नहीं है, वे क्या इसका भलीभाँति मतलब समझ सकेंगे?

मैंने कहा—कदापि नहीं, इसका कारण यह है कि इस प्रकृति के साथ हमारा भाई-बहन का नाता है और अंग्रेजों का नाता मानो औरत-मर्द का है। हम पैदाइशी आत्मीय हैं, हम स्वभाव से ही एक हैं। हम उसके अन्दर नूतनता, विचित्रता और सूक्ष्म भावच्छायां देख पाते हैं। एक प्रकार से चेतना-शून्य अनुराग में लीन रहते हैं और अंग्रेज प्रकृति के बाहर से अन्दर प्रवेश करते हैं। वे अपनी आजादी की रक्षा कर सके हैं, इसी लिए उनका परिचय इतना अधिक मनोहर और मिलन इतना मधुर है। वह भी नयी दुलहिन की तरह प्रकृति को अपने अधिकार

में लाने की चेष्टा करता है और प्रकृति भी लुभाती रहती है। वह पहले इस प्रकृति को जड़ समझता था। अचानक एक दिन उसने प्रकृति की उमड़ती जवानी को देखकर उसके अपरिमेय आध्यात्मिक सौन्दर्य का इजाद किया। हमने खोज नहीं की। इसका एकमात्र कारण है कि हम में इसके लिए कभी जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई।

परस्पर संघर्ष से ही एक आत्मा दूसरी आत्मा को भलीभाँति पहचान सकती है, तभी वह संगम की आध्यात्मिकता का पूर्णरूप से अनुभव कर सकती है। किसी कवि ने लिखा है—ईश्वर ने अपने ही मातृअंश और पितृअंश को मर्द-औरत के रूप में इहलोक में विभक्त कर दिया है। ये विभक्त अंश ही एक दूसरे के प्रति किसी अनिवार्य आनन्द द्वारा आकृष्ट होते जाते हैं। किन्तु यदि यह विच्छेद का सबेरा न होता तो एक दूसरे में इतना अगाध प्रेम न होता। मेल की अपेक्षा मिलन में ही अधिक आध्यात्मिकता है।

हम इस धरती को माँ कहकर सम्बोधित करते हैं। पत्थर पूजते हैं। पीपल और बरगद के छायेदार पेड़ को बाबा मानते हैं, पर आत्मा के भीतर उसकी आध्यात्मिकता का अनुभव नहीं करते। हम कल्पना से उसका प्रतिष्ठान कर देते हैं और सुख के लिए उसके सामने नतमस्तक हो सिज़दा करते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि आध्यात्मिक सम्बन्ध केवल सौन्दर्य और आनन्द का सम्बन्ध है। वह सुविधा-असुविधा का सम्बन्ध नहीं है। प्रवाहिनी जब आत्मा को आनन्द पहुँचाती है, तब वह आध्यात्मिक रहती है, पर ज्योंही हम उसे किसी मूर्ति में निबद्ध करके कुबेर-राशि की प्रार्थना करते हैं, त्योंही वह सौन्दर्य रहित मोह-अज्ञानतामात्र रह जाती है और हम अपने देवी-देवता को जड़मूर्ति समझने लगते हैं।

हे गंगामाता ! मैं तुमसे धन और स्वर्ग नहीं माँगता और यदि इसकी इच्छा हो तो मिल भी नहीं सकती। परन्तु बचपन ही से कितने ही दिन सूर्योदय-सूर्यास्त के समय अन्धेरे पख की मलीन चाँदनी और बरसात के मेघों से आच्छादित मध्याह्न में, मेरे अन्तःकरण को अवर्णनीय आनन्द मिलता है। मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि मेरे इस दुर्लभ जीवन के वही आनन्द जन्म-जन्मान्तर मिलते रहें। धरती से मैंने तमाम जीवन, जो अनुपम सौन्दर्य इकट्ठे किए हैं, मेरी विनय है कि इहलोक से जाते समय उन्हें खिले हुए कमल के समान अपने हाथ में लेकर जा सकूँ और राह में अगर मेरे प्रियतम से भेंट हो जाय, तो उनको वह अनुपम भेंट समर्पित कर अपने इस जीवन को सार्थक करूं।

स्त्री—पुरुष

पवनदेव ने एक जटिल समस्या उपस्थित कर दी। उन्होंने कहा— इंगलिश-साहित्य में गद्य या पद्य दोनों ही तरह के काव्यों में नायक और नायिका के बड़प्पन का समान विकास मिलता है। डेसडेमोना के सामने इयागो और ओथेलो की प्रभा तनिक भी कम नहीं है। क्लियापेट्रा यद्यपि अपने श्यामल बंकिम बन्धन जाल में एण्टनी को आबद्ध करने में समर्थ हुई है, किन्तु लता-पाश से जकड़े हुए भग्न जयस्तम्भ की तरह एण्टनी की की श्रेष्ठता सबके सामने जाहिर हो गयी है। लैमरमूर की नायिका अपने सरल सुकुमार सौन्दर्य से हमारे मन को भले ही मोहित

कर ले, रेवेन्सउड के विषण नायक की ओर से हमारी नजर भले ही न फिरे, किन्तु बंगला-साहित्य में स्त्री की ही प्रधानता देखी जाती है। कुन्दननन्दिनी और सूर्यमुखी के सामने नगेन्द्र की प्रभा बिल्कुल फीकी है, रोहिणी और भ्रमर के निकट गोविन्द लाल दिखाई ही नहीं पड़ता। ज्योतिर्मयी कपाल कुण्डला के सामने नन्दकुमार की प्रभा उस जुगनू के समान है, जो टिमटिमाता फिरता है। प्राचीन बंगला-काव्य में भी यही मिलता है। विद्या सुन्दर में अगर किसी की सजीवमूर्ति है, तो केवल विद्या और मालिनी की है। सुन्दर के चरित्र में कुछ भी सार वस्तु नहीं है। कवि कंकड़ चंडी के विशाल क्षेत्र में केवल कुल्लना और खुल्लना डोलती फिरती है। बंगला-साहित्य में पुरुष शंकर की तरह धूल में निश्चल लोटा पड़ा है और स्त्री सीने पर सजीव भाव से विराजमान है। इसका क्या कारण है?

पवन के सवाल का जवाब देने के लिए निर्झरिणी व्यग्र हो उठीं थीं और प्रकाशवती टेबुल पर पड़ी पुस्तक को खोलकर इस प्रकार देखने लगीं मानो वह उस तरफ ध्यान ही न दे रही हों।

पृथ्वीराज ने कहा—तुमने बंकिम बाबू के जिन कई उपन्यासों का जिक्र किया है, उनमें सभी मानस प्रधान हैं, कर्म प्रधान कोई नहीं। मानस-जगत में स्त्रियों की ही अधिक प्रधानता होती है, कर्म-जगत में पुरुष का अधिकार अधिक है। जहाँ केवल हृदयवृत्ति का प्रसंग होगा, वहाँ पुरुष स्त्री के सामने खड़ा कैसे हो सकता है? काम करने के मैदान में ही उसका चरित्र विकसित होता है।

निर्झरिणी ने अब मौन भंग कर दिया। वह पुस्तक को परे रख, उदासीनता का भाव छोड़कर बोल उठीं—दुर्गेशनंन्दिनी में विमला का चरित्र किस कार्य में विकसित नहीं हुआ? इतनी तत्परता, इतनी निपुणता

और ऐसा अध्यवसाय उक्त उपन्यास में कितने नायकों में पाया जाता है? आनन्दमठ तो कार्यप्रधान उपन्यास है। सत्यानन्द, जीवानन्द, भवानन्द इत्यादि सन्तान सम्प्रदाय के पात्रों ने काम किया है सही, पर उनके काम कवि के वर्णनमात्र हैं। यदि किसी के चरित्र में कार्यकारिता का पूर्ण और वास्तविक विकास हुआ है, तो शान्ति के चरित्र में, देवीचौधरानी में किसने कर्तृत्वपद हासिल किया है? स्त्री ने। किन्तु क्या वह प्रभुत्व—वह कर्तृत्व अन्तःपुर का है! कभी नहीं।

पवन ने कहा—भाई पृथ्वीराज! तर्कशास्त्र की सरल रेखा द्वारा सभी वस्तुओं को नियमित रूप से श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता। शतरंज की पटरी पर ही लाल-काले रंग के खाने काटे जा सकते हैं, क्योंकि वह बेजान काठ की चीज़ है, परन्तु मनुष्य का चरित्र तो उतनी साधारण वस्तु नहीं है। तुम अनेक युक्तिबल से भावप्रधान, कर्मप्रधान इत्यादि कितनी ही अकाट्य सीमाओं का निर्देश क्यों न कर दो, परन्तु सभी विशाल संसार के विचित्र कार्यक्षेत्र में उलट जाती है, समाज के लोह-कड़ाहे के नीचे अगर जीवन की आग न जलती तो मनुष्य का श्रेणी विभाग ठीक समान भाव से अचल-अटल रहता। परन्तु जीवन-शिखा जब जल उठती है, तब छन-छन करके सम्पूर्ण जीवन चरित्र जलता रहता है और नयी-नयी आश्चर्यजनक विचित्र सीमाएँ बनती रहती हैं। साहित्य उसी परिवर्तनशील मानवजगत का चंचल प्रतिबिम्ब है। उसकी समालोचना को शास्त्र के विशेषणों से बाँधने की व्यर्थ चेष्टा की जाती है। हृदयवृत्ति में स्त्री ही प्रधान होती है, इस बात को कोई जोर देकर नहीं कह सकता। ओथेलो तो मानस-प्रधान नाटक है, परन्तु उसमें नायक के हृदय के आवेश की प्रबलता क्या ही प्रचण्ड है! किंगलियर की हृदयझटिका क्या ही भयंकर है।

गगन सहसा अधीर होकर बोले—ओः ! तुम लोग व्यर्थ की तर्कबाजी में रत हो ।. अगर गंभीरतापूर्वक विचार कर देखो, तो पावोगे कि कार्य मात्र ही स्त्री का धर्म है, कार्य को छोड़ स्त्री का अन्यत्र स्थान हो नहीं है । यथार्थ पुरुष योगी, उदासी, एकान्तवासी है । कैलेडिया के मरुस्थल में पड़कर गड़ेरिया जब अकेले ऊपर नजर उठाए आधी रात को आकाश के नक्षत्रों की गतिविधि का निरीक्षण करता था । तब उसे क्या ही आनन्द प्राप्त होता था ! कोई स्त्री क्या इस प्रकार व्यर्थ अपना समय व्यतीत करेगी ? जो ध्यान केवल विशुद्ध आत्मा के लिए ही आनन्द जनक है, उसे कौन स्त्री बेशकीमती समझेगी ? पृथ्वीराज के कहने के अनुसार अगर मनुष्य वास्तव में कार्यशील होता, तो मनुष्य-समाज की इस तरह उन्नति न होती; इस तरह नवीन तत्व नवीन भाव आविष्कृत न होते । निर्जनता के अन्दर—अवसर के भीतर—ज्ञान का प्रकाश—भाव का आविर्भाव होता है । जो यथार्थ मनुष्य है, वह सदा उसी निर्जनस्थान में निवास करता है । कर्मवीर नैपोलियन भी कभी अपने काम में लीन नहीं रहता था । वह जहाँ भी रहता था, निबिड़ निर्जनता में अपने भाव रूपी आकाश से घिरा रहता । वह सदा एक बृहत दृष्टिकोण द्वारा रक्षित रहकर भीषण कार्यक्षेत्र में भी सूनापन महसूस करता था । भीष्म तो कुरुक्षेत्र की लड़ाई में सबसे बड़े नायक थे, परन्तु उस भीषण लोह-संहार के अन्दर भी उनके समान एकान्तवासी कौन था ? वह काम करते थे या ध्यान करते थे ? स्त्री ही वास्तव में कर्मी है । उसके काम के बीच कोई व्यवधान नहीं है । वह कर्म में एकदम लिप्त रहती है, वही वस्तुतः लोकालय में निवास करती है, संसारकी रक्षा करती है । स्त्री ही दरअसल में पूर्णरूप

से साथ दे सकती है, वही पूर्णरूप से हिलमिल जाती है। उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता।

प्रकाशवती ने कहा—तुम्हारी तमाम बातें ही विचित्र होती हैं, किसकी सामर्थ्य है कि उन्हें समझ सके। मेरा यह कथन नहीं है कि स्त्रियाँ कोई काम ही नहीं कर सकतीं। तुम उन्हें काम करने की फ़ुरसत ही कहाँ देते हो?

गगन ने कहा—स्त्रियाँ स्वयं कर्म के बन्धन में बँध गयी हैं। जैसे अंगारा स्वयं जलकर राख हो जाता है, वैसे ही स्त्री अपने स्तूपाकार कार्य विशेष से अपने को ढँक लेती है। वही उसका अन्तःपुर है। उसके चारों तरफ तनिक अवकाश नहीं। अगर उसको राख से निकाल कर वहिःसंस्कार की कार्यराशि में डाल दिया जाय, तो बड़ी उथल-पुथल मच जाय। पुरुष में उसकी तीव्र गति का अनुसरण करने की शक्ति नहीं है। मनुष्य को काम करने में देर होती है उसके और उसके कार्यक्षेत्र में एक लम्बा रास्ता रहता है। वह रास्ता चिन्ताओं से ढँका रहता है। अगर स्त्री एक बार वहिविप्लव में मदद दे, तो पल भर में तमाम चिन्तायें धू-धू कर जल उठें। इस प्रलयकारिणी शक्ति को संसार ने बाँध रखा है। इस आग से केवल शयन-गृह का दीपक जलता है। शीतार्त्त जीवों का शीत निवारण और भूखों की क्षुधा-तुष्टि होती है। अगर हमारे साहित्य में ये सुन्दर अग्नि शिखायें तेज-दीप्यमान हो गयी हों तो इस विषय में वाद-विवाद की क्या जरूरत है?

मैंने कहा—हमारे साहित्य में स्त्रियों ने प्रधानता प्राप्त की है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे देश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ही श्रेष्ठ हैं।

निर्झरिणी का चेहरा लाल हो गया और वह हँस पड़ीं।

प्रकाशवतीने कहा—यह तुम्हारी अत्युक्ति है।

मैं समझ गया, प्रकाशवती चाहती हैं कि इनका प्रतिवाद करके अपनी जाति की बड़ाई और भी सुनूँ। मैंने यह बात उनसे साफ कह दी और साथही यह भी कह दिया, स्त्रियाँ अपना बखान सुनना बहुत चाहतीं हैं। प्रकाशवती ने जोर से सिर हिलाकर कहा—कभी नहीं।

निर्झरिणी ने मीठे स्वर में कहा—बात सही है। अप्रिय बात हमें अत्यन्त कड़ुवी लगती है तथा प्रिय बात अत्यन्त मधुर। निर्झरिणी औरत होते हुए भी सही बात मान लेने में कभी संकोच नहीं करती।

मैंने कहा—इसका कारण यह है कि ग्रन्थकारों में कवि और गुणियों में गायक स्तुति मिष्ठान के विशेष आदी होते हैं। दरअसल बात यह है कि सुन्दर बनाना जिसका काम है, प्रशंसा ही उनकी कामयाबी को ठीक-ठीक नापने का एक मात्र उपाय है और सभी काम के फलों के अनेकों सबूत मिलते हैं, लेकिन स्तुति लाभ को छोड़ कर मनबहलाव का अन्य सबूत नहीं मिलता। अतः गवैया प्रत्येक ताल पर रुककर 'वाहवा' की आस लगाये रहता है अतः अपमान से गुणी मात्र को ही क्लेश होता है।

पवनने कहा—केवल यही नहीं, निरुत्साह मनोहर काम में एक विशेष पाबन्दी है। सुननेवालों के मनको बढ़ते हुए देखकर गवैये का मन अपनी सारी शक्ति को प्रस्फुटित करनेका अवसर पाता है। अतः स्तुतिवाद केवल उसका इनाम ही नहीं है, अपितु उसके कार्य-साधन का मुख्य अंग है।

मैंने कहा—स्त्री का भी मुख्य काम आनन्द दान करना है। अपने अनमोल स्तित्व को संगीत और कविता की तरह सम्पूर्ण सौन्दर्य बना डालने पर ही उसका मनोरथ पूरा होता है। यही कारण है कि

स्त्रियाँ स्तुतिवाद से प्रसन्न होती हैं केवल अपने घमण्ड को परितृप्त करने के लिए नहीं, अपितु अपनी जिन्दगी की सार्थकता को अनुभव करने के लिए वे ऐसा करती हैं। भूल और असम्पूर्णता दिखाने पर एकाएक उनके अन्तरात्मा को ठेस पहुँचती है। यही कारण है कि लोक निन्दा उनके लिए बड़ी भयङ्कर बात होती है।

पृथ्वीराजने कहा—तुमने तो अपनी वाणी से कवित्व का अच्छा परिचय दिया है। तुम्हारी बातें सुनने में बहुत प्रिय लगी हैं, पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि स्त्रियों के कार्य का प्रसार अत्यन्त संकीर्ण है। इस विशाल संसार में उनके लिए स्थान नहीं है। और उनका स्तित्व भी कार्य-क्षेत्र में परिमित है। मालिक, पुत्र, स्वजन, पड़ोसी आदि को खुश रखने में ही उनका वर्तमान कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है। जिसके जीवन का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होता है, जिसके कार्यों की फल श्रुति हमेशा शीघ्र नजर नहीं आती, ऐसी चीजें प्रभाव रहित हो जाती हैं। लोकनिन्दा और लोकस्तुति से स्त्रियों का मन बहुत विचलित हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जीवन से उनका उधार लेन-देन नहीं रहता, बल्कि वे नकदी में लेन-देन रखती हैं। उसका घाटा-नफा शीघ्र सामने आ जाता है। तत्क्षण जो लाभ उन्हें प्राप्त होता है, वही उनके हाथ लगता है, इसीलिए वे वसूली करने में सक्रियता दिखाती हैं।

प्रकाशवती विरक्त होकर विदेशी विश्व-हितैषिणी रमणियों का मिशाल खोजने लगीं।

निर्झरिणी ने कहा—बृहत्व और महत्व की एकता सब समय बनी नहीं रहती। हम विशाल दायरे में काम नहीं करती हैं, इसलिए हमारे कामों को कम गौरव प्राप्त है, इस तर्क को मैं मानने के लिए कभी तैयार

नहीं हूँ। अस्थिचर्म, मांसपेशी और स्नायु अधिक स्थान छेंक लेते हैं, पर मर्मस्थान गुप्त होता है। हम मानव समाज के उसी बिन्दु पर विराजती हैं। पुरुष देवता बैल-भैंसे आदि सवारी पर विचरण करते हैं और रमणीदेवी हृदयरूपी कमल पर निवास करती हैं। वह एक विकसित ध्रुव सौन्दर्य के बीच में अपनी पूरी महिमा में समासीन रहती हैं। मेरी यही प्रार्थना है कि यदि इस संसार में फिर जन्म लूँ, तो स्त्रीयोनि में ही मुझे स्थान मिले। भिखारिणी न होकर अपितु विपुल-धन राशि लेकर उतरूँ। जरा गौर करो, समस्त मानस संसार में नित्य रोग, चिन्ता और क्षुधा-शान्ति का कितना प्राबल्य है, प्रतिपल कर्म-क्षेत्र से उड़-उड़कर धूल की ढेर लगती जाती है, पति-गृह का संचालन कितना कठिन होता जाता है। यदि कोई लोकवत्सलादेवी प्रतिदिन सिरहाने बैठकर रोगी को धैर्य बँधाती रहे, अपने कार्य-कुशल हाथों से, यदि प्रतिपल उसकी मायूसी दूर करती रहे और घर-घर में जाकर अपने स्नेह से कल्याण का विधान करती रहे, तो किसके मुँह से यह शब्द निकल सकेगा कि स्त्रियों का कार्य क्षेत्र अत्यन्त सँकरा है? यदि उस लक्ष्मी की मूर्ति में आदर्श को हृदय में पवित्र कर रखें, तो नारी-जीवन का कोई अनादर नहीं कर सकेगा।

इसके बाद हम लोग कुछ क्षण मौन रहे। इस अचानक शान्ति व मौन के कारण निर्झरिणी शर्माकर मुझसे बोली—तुम हमारे देश की रमणियों के सम्बन्ध में कुछ कहने जा रहे थे, पर बीच में दूसरा प्रसंग आ जाने के कारण रुक गये। बात क्या थी? बताओ तो सही।

मैंने कहा—मैं यही कह रहा था कि हमारे देश की औरतें हम पुरुषों से बहुत श्रेष्ठ हैं।

पृथ्वीराज—इसका सबूत?

मैंने कहा—'प्रत्यक्षम् किम् प्रमाणम्'—सबूत घर-घर में है, सबूत हमारे भीतर ही है। पश्चिम में पर्यटन करते समय बहुतेरी ऐसी नदियाँ मिलती हैं। जिनका अधिक भाग रेतीला होता है। केवल एक किनारे सफेद जल का एक पतला सोता मन्दगति से बहता है। वह दृश्य हमारे पुरुष-समाज का स्मरण दिलाने लगता है। हमारा पुरुष समाज काहिल, निष्फल तथा निश्चल रेत की ढेर की तरह पड़ा रहता है और पवन के झोंके से उड़-उड़कर आकाश में लगता है और हम यदि कोई कीर्ति-स्तंभ निर्मित करने की चेष्टा करते हैं, तो वह बालू की दीवार की तरह ढह जाता है और हमारी बाईं ओर स्त्री जाति विनम्र सेविका की तरह अपने को संकुचित करके सुधास्रोत के रूप में बह रही हैं। उन्हें पल मारने की भी फुरसत नहीं है। उनका जीवन एक ध्रुव लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। हम लोग लक्ष्य रहित होने के कारण सबके पैरों के नीचे कुचले जाकर मिलने में समर्थ नहीं हो सकते। जिस ओर जल-धारा है, उसी ओर हमारी खेती जाती है, उधर ही सुषमा और सफलता का भण्डार खुला रहता है। जिधर हम हैं, उधर ही मरुस्थल की शुष्कता, निस्तब्धता और हीन दासवृत्ति है। क्यों पवन, तुम्हारी क्या राय है ?

पवनदेव, निर्झरिणी और प्रकाशवती की ओर व्यंग करके मुस्कराते हुए बोले—आज की बैठक में अपनी हीनता मंजूर करने में दो बड़ी अड़चने मौजूद हैं। मैं उनका जिक्र करना नहीं चाहता। सारी दुनिया में हिन्दुस्तानी मर्दों का केवल अन्तःपुर में ही आदर होता है। वहाँ वे लोग केवल मालिक ही नहीं हैं वरन् देवता समझे जाते हैं। जनाब भाई साहब! हमें क्या ग़रज पड़ी है कि अपने उपासकों से ज़ाहिर करने जाँय कि हम देवता नहीं हैं, सिर्फ मिट्टी और घास के पुतले भर हैं, ? हममें अटूट श्रद्धा रखने वाला भक्त अपने हृदय-कुंज के

सभी खिले फूलों को सोने के थाल में सजाकर हमारे चरणों पर आदर के साथ चढ़ाता है, तो हम क्यों उसे वापिस कर दें? हमें देवता के सिंहासन पर बैठाकर यह चिरव्रती सेविका अपने प्रेमरूपी दीपक से शाम को हमारी आरती उतार कर अत्यन्त सुख पाती है। अगर उसके सामने अपना सिर ऊँचा उठाकर न बैठे रहें, चुपचाप उसके इस भक्ति को स्वीकार न करें, तो उन्हें सुख कैसे मिलेगा और हमारा आदर ही कहाँ रह जायगा? जब वह छोटी थी, तब मिट्टी के पुतळे से खेला करती थी और जीव-जैसा प्रतीत होती थी, जब बड़ी हुई तब वह मनुष्य-रूपी पुतळे से इस प्रकार खेलने लगी, मानों वह कोई देवता हो। उस वक्त अगर कोई उस पुतले को तोड़ता, तो क्या वह लड़की बिलख-बिलख कर रोने नहीं लगती? उसी तरह अगर उस वक्त उसकी पूजा की मूर्ति को कोई चकनाचूर कर दे, तो क्या उसका दिल नहीं दुःखेगा? जहाँ आदमी सचमुच गौरव वान है, वहाँ आदर पाने के लिए उसे वेष बदलने की जरूरत नहीं पड़ती। जहाँ इन्सानियत की कमी होती है, वहाँ देवता बनने का ढोंग रचना पड़ता है। इस धरती पर कहीं भी जिसका असर नहीं, एक मामूली आदमी की हैसियत से औरत से आदर की आस क्योंकर लगा सकता है? हम लोग एक-एक देवता हैं, इसीलिए इन औरतों के कोमल दिलों को निस्संकोच भाव से अपने चरणों की दासी बनाए रहते हैं।

प्रकाशवती ने कहा—जो सही अर्थ में आदमी है, वह आदमी होकर देवता-जैसा पूजा लेते शरमाता है और अगर पूजा पाता है, तो उस लायक अपने आपको बनाने की चेष्टा करता है। पर हिन्दुस्तान में तो उल्टी गंगा बहती है। यहाँ तो आदमी ढोंग रचकर अपना उल्लू सीधा करने में फूळे नहीं समाता। अयोग्य आदमी अपने ढोंग से योग्य

बनने की कोशिश करता है। ऐसे आदमियों के बारे में तो—'अधजल गगरी छलकत जाय' वाली कहावत ठीक-ठीक चरितार्थ होती है। आजकल के पतिदेव अपनी औरतों को पति-पूजा की शिक्षा जी-जान से देते हैं। यह देखकर देवता भी सशंकित हो उठे हैं। औरतों को पूजा सिखाने के बजाय मर्दों को देवता होने की शिक्षा देने से अधिक लाभ हो सकता था। पति-पूजा घटती जाती है, इसलिए जो लोग मौजूदा औरत-समाज की खिल्ली उड़ाते हैं, उन्हें अगर तनिक भी रस ज्ञान होता, तो वह खिल्ली उन्हीं को लौटकर लगती। हिन्दुस्तानी औरतों को धन्य है, कि उन्होंने अपनी पिछले जन्म की अच्छी करनी से अच्छे देवता पाई हैं, इस देवता का क्या सुन्दर शकल-सूरत है! महिमा भी क्या ही अपूर्व है!

यह बात निर्झरिणी की सहन-शक्ति के बाहर हो गयी। वह सिर हिलाते हुए गम्भीर-भाव से बोली—तुम लोगों के उत्तरोत्तर सुर चढ़ाने से हमारे स्तुतिगान का मिठास का नाश हो जाता है। हम यह बात मान भी लें कि तुम्हारे कहने के अनुसार हम मर्दों का जितना आदर करती हैं, उतने ही आदर के लायक वे नहीं हैं, पर क्या यह सही नहीं कि तुम लोग हमें हद से ज्यादे बढ़ा रहे हो? तुम लोग अगर देवता नहीं हो, तो हम लोग भी देवी नहीं हैं। अगर मर्दों और औरतों के दल में समझौता हो जाय, तो मर्द देवता और औरत देवी बन जाय। और आये दिन का यह वितंडावाद हमेशा के लिए खत्म हो जाय। इसके अलावा हममें तमाम खूबियाँ नहीं हैं—हम दोनों दलों में कोई-न-कोई बढ़कर खूबी जरूर है।

मैंने कहा—ठंढे दिल तथा शीरी ज़बान में बातें कहकर तुमने बहुत अच्छा किया है, नहीं तो प्रकाशवती के बातों की बौछार के बाद सच्ची

बात पर पर्दा पड़ जाता। तुम सिर्फ कविता के भीतर ही देवी हो, मन्दिर में हमीं देवता हैं। देवता का सारा भोग हमारा ही है। तुम्हारे लिए तो 'मनुसंहिता' दो मंत्र हैं। तुम हमारी ऐसी देवी हो, कि अगर हम तुम्हें सुख और स्वास्थ्य की अधिकारिणी कहें तो हमें शरमाना पड़े। सारी धरती हमारी है, इसके अलावा, जो कुछ है, वह तुम्हारा ही है। खाने के वक्त हम हैं, जूठा चुगने के वक्त तुम हो। सवतंत्रतापूर्वक हम विचरते हैं, और कसरत से मिलनेवाली मनुष्य-योनि में पैदा होकर घर के एक कोने में जहाँ प्रकृति की शोभा दुर्लभ है, रोग की खाट तुम्हारे हिस्से में है। हम देवता होकर सभी से पैर पुजवाते हैं और तुम देवी होकर सभी के पैरों की ठोकरें खाती हो। अगर इस पर ग़ौर किया जाय तो इन दोनो प्रकार के देवताओं में फर्क मालूम पड़ता है। ये तो देवता और देवी की बातें हुई। मेरे ख्याल में अक्ल के बारे में हिन्दुस्तानी औरतें, मर्दों के बजाय श्रेष्ठ हैं। मेरा ऐसा ख्याल है कि अपने देश में पढ़ी-लिखी औरतें पढ़े-लिखे मर्दों से चुस्त, चालाक और अक्लमन्द होती हैं, हमारे यहाँ के पढ़े-लिखे मर्दों में इस बात की भारी कमी है कि वे व्यवहार एवं दुनियादारी में पिछड़े हैं। मोर की सुन्दर पंख लगाकर मोर बनने की नाकामयाब कोशिश करने वाला कौवा जिस तरह शर्म नहीं खाता, उसी तरह शिक्षित मर्द अपने असली रूप को बनावटी बनाकर ऐंठने में शर्म नहीं खाता। लेकिन पढ़ी-लिखी औरतें अपनी इज्ज़त का सदा ख्याल रखती हैं और सुन्दर ढंग से अपनी सभी ज्यादतियों को छोड़ देती हैं।

पवने कहा—ज़रा एक नजर इधर भी डालो। ज़माने ने कैसा रंग बदला है। आजकल अक्सर देखने में आता है कि शौहर कोट-पतलून पहनकर बाहर निकलते हैं और बीवी साड़ी पहने साथ में रहती हैं।

एक महापुरुष विदेशी पहनावे की तारीफ करते हैं और एक देशी पहनावे में कितने संयम से विराज रही हैं। केवल पहनावे में ही नहीं, दोनों के खयालों में भी ऐसा अलगाव है। एक अपनी नयी शिक्षा के मद में रहता है और दूसरी अपनी शिक्षा को अपना भूषण बना लेने में समर्थ हो जाती है। वे अपनी शिक्षा को अपने फर्ज के साथ, अपने दिल के साथ और अपने चारों तरफ की चीजों के साथ मिला देती है। मर्द जहाँ अपना साहबी की अकड़ दिखाकर दूसरे पर अपना रोब ग़ालिब करना चाहता है, वहाँ औरत अपनी कोमल भावना से पास-पड़ोस के लोगों से मेल-मिलाप बढ़ाने की चेष्टा करती है।

यह अलगाव केवल औरत जाति की कोमलता के कारण है, ऐसी बात नहीं, हमारी औरतों के भीतर एक कुदरती सुबुद्धि है। हिन्दुस्तानी साहित्य में औरतों के चरित्र की प्रधानता है। इसका खास कारण यह है कि हिन्दुस्तानी समाज में औरतों की ही प्रधानता है।

मैंने कहा—इसका खास कारण यह है कि हिन्दुस्तान में मर्दों को कोई काम नहीं है। इस देश में घर-गृहस्थी को छोड़ दूसरा कुछ है ही नहीं। इस गृहस्थी को औरतें ही सम्भालती हैं। घर का सारा भार उन्हीं के सिर रहता है। और ये स्त्रियाँ सदा से इस बोझ को ढोती आती हैं। जैसे एक छोटा-सा स्टीमर भारी बोझ को धार की ओर खींच ले जाता है, वैसे ही हमारे देश की औरतें अपने स्वामी नामक एक अनावश्यक बोझ को खींचे लिए जा रही हैं। दूसरे देशों में मर्द सन्धि-विग्रह राज्य चलाना आदि बड़े-बड़े कामों में बहुत दिनों से जुटे रहकर औरतों से अलग एक दूसरी ही प्रकृति गढ़ लेते हैं। पर हमारे देश की औरतों को पुरुषोचित कोई काम नहीं करना पड़ता, बल्कि नानाप्रकार का अपमान सहना पड़ता है। सौभाग्य की बात है कि औरतों को बाहर जाकर कभी कर्त्तव्य

की तलाश नहीं करनी पड़ती। वह ज्योंही प्यार करना शुरू करती है त्योंही उसके फर्ज का श्रीगणेश हो जाता है। उसकी चिन्तन एवं युक्ति की सारी वृत्तियाँ सजग हो उठती हैं। बाहर का कोई राष्ट्र-विप्लव उसके काम में रुकावट नहीं ला सकता। गरिमा को फीका नहीं कर सकता। जातीय अधीनता के अन्दर भी उसका तेज मलिन नहीं होता।

निर्झरिणी की ओर फिरकर मैंने कहा—हम लोग विदेशी इतिहास से नयी रोशनी लेकर कार्य-क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहते हैं। लेकिन भीगी लकड़ी जलती नहीं, मुर्चा लगा रुपया चलता नहीं। उसके जलने से तो अधिक धुआँ निकलता है, वह जितना चलता है, उससे अधिक बजता है। आज हम तुम्हारी उज्ज्वलता और चाल-चलन को देखकर शर्मिन्दा हो रहे हैं। हम लोग दिन-रात निठल्ले रहकर व्यर्थ की बातों में मगजपच्ची करते रहे हैं और सदा तुम लोगों को अपने काम की धुन सवार रही है। इसलिए जितनी आसानी से तुम लोग शिक्षा ग्रहण कर सकती हो, उस पर अपना अधिकार जमा सकती हो, उसको अपनी जिन्दगी की रौ में बहा सकती हो, हम लोग नहीं कर सकते। हम लोगों के लिए यह 'हरकुलियन'* काम हो जाता है। इसका कारण यह है कि चरित्र की एक वस्तु तुम्हारे पास है। अपनी वस्तु न रहने से दूसरे की वस्तु नहीं मिलती। और अगर किसी तरह मिल भी जाय, तो हम अपना नहीं सकते हैं। इसीलिए हमारी पढ़ी-लिखी औरतों के अनुरूप पढ़े-लिखे मर्द नहीं मिलते। अतः इस वक्त हमारा बोझ तुम्हीं लोगों को बर्दाश्त करना पड़ेगा। हमें कर्त्तव्य की ओर झुकाना होगा, हमारे झूठे घमंड को चूर चूर करना होगा। हामरे विश्वास को जिन्दा रखना होगा। अर्थात् इसको भारी

*हरकुलियन—कठिन।

बोझ से लदी हुई नौका का पतवार तुम्हीं को मजबूती से पकड़ना होगा। थोड़ा-थोड़ा पाल की रस्सी पकड़ना हमने सीखा है, इसलिए तुम यह न समझ बैठना कि हम चतुर मल्लाह हो गये हैं। अब भी हमें आत्मशक्ति की जरूरत है। गले में नकटाई और पीठ पर थप्पड़ हमारे लिए सम्मान-जनक नहीं है। यदि तुम लोग कड़ी झिड़की एवं मीठी पुचकार के साथ यह नसीहत न दोगी, तो हम सदा इस धरती पर भार बने रहेंगे।

निर्झरिणी बहुत देर तक मौन धारण किए रही। फिर सहसा मौन भंग कर बोलीं—अगर हमें मालूम होता कि किस उपाय से कौन काम किया जा सकता है, तो इसके लिए अवश्य चेष्टा करते देखती।

मैंने कहा—तुम जैसे हो वैसे ही पड़े रहो। अब तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा। दुनिया देख ले कि सत्य, सरला और श्री अगर रूप धरकर आवें, तो वह कितनी सुन्दर हो सकती है। जिस घर में लक्ष्मी का वास है, वहाँ कुरूपता के लिए जगह नहीं। आजकल हमारे कामों में लक्ष्मी का हाथ नहीं रहता, इसलिए उसमें इतनी ज्यादती रहती है। अगर तुम्हारा शिक्षित औरतों का दल अपनी दिल की सुन्दरता को लेकर हमारे समाज के बीच आ खड़ा हो जाय, तो इसमें लक्ष्मी की स्थापना हो सके और आसानी से हमारा जीवन नियमित और सामंजस्य-पूर्ण हो जाय।

निर्झरिणी यह सुनकर कुछ न बोलीं। कृतज्ञता प्रकट करती हुई हमारा ललाट छूकर अपने घरेलू काम में जुट गयीं।

पल्लीग्राम

मैं इस वक्त बंगाल के जिस हिस्से में रहता हूँ, उसके समीप थाना या कचहरी नहीं है। रेलवे स्टेशन भी कुछ फासिले पर है। जो लोग खरीद-बिक्री, मुकदमा और आत्मगौरव का प्रचार करते हैं, उनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली कोई संस्था वहाँ नहीं है, जिसके द्वारा उस पल्ली के साथ भाव का आदान-प्रदान किया जा सके। उस पल्ली से होकर केवल एक नदी बहती है। ऐसा लगता है, वह नदी भी उन गाँववालों के बाल-बच्चों में से है। यह उन्हीं की अपनी सम्पत्ति हो गयी है। उस गाँव के लोग उसी नदी में हिल-मिल गये हैं। और एक सुन्दर नाम देकर उन्होंने इसे बिल्कुल अपना बना लिया है।

बरसात का मौसम है। आसमान में बादल हवा रूपी घोड़े पर चढ़कर दौड़ लगा रहे हैं। चारों ओर पानी-ही-पानी दिखायी पड़ता है। केवल खेतों की मेड़ें कुछ-कुछ दिखायी पड़ती हैं, जिनमें धान बोया गया है। बहुत दूरी पर पेड़ों की आड़ में, ऊँचाई पर एक गाँव दीप की तरह दीख पड़ता है।

यहाँ के ग्रामीण कोमल, सरल और भक्तिभावपूर्ण स्वभाव के हैं। ऐसा प्रतीत होता है, आदम और ईव के ज्ञान-वृक्ष का फल चखने के पहले ही ब्रह्मा ने इन ग्रामीणों के पूर्व पुरुषों को पैदा किया था। इसीलिए अगर शैतान भी इनकी झोपड़ी में प्रवेश करता है, तो ये लोग बच्चों की तरह उस पर विश्वास कर लेते हैं और अतिथि की भाँति इनका आदर-सत्कार करते हैं।

इस तरह के श्रद्धालु एवं भोलेभाले लोगों के हृदय-आश्रम में जिस वक्त मैं निवास करता था, ऐसे ही वक्त पञ्चभूत सभा के किसी सभ्य ने

मेरे पास अखबार के कुछ कटिंग भेज दिये। पृथ्वी घूम रही है, इस बात को याद करादेना उनका उद्देश्य था। उन्होंने पेरिस और लन्दन के कई एक खबरों की बातें इकट्ठी कर डाक से इस जलमग्न, श्यामल धान्य-क्षेत्रों के बीच भेज दी थीं। उन्होंने एक प्रकार से यह अच्छा ही काम किया था। अखबारों की कटिंग पढ़कर मेरे दिमाग में अनेकों बातें उठीं। और कलकत्ता जैसे विशाल नगर में रहने पर ये बातें मैं अच्छी तरह नहीं समझ पाता था।

मैं ग़ौर करने लगा—हम सिद्धान्तः आजकल के किसानों और कमकरों को चाहे कितना ही अनपढ़, असभ्य, नीच और बर्बर समझें, घृणा करें, पर उनके निकट आने पर उन्हें अपना समझने लगते हैं और उनके प्रति हमारा स्नेह उमड़ पड़ता है। मैंने देखा कि मेरा हृदय चुपके-चुपके इनके प्रति श्रद्धा प्रकट करता है।

परन्तु लन्दन और पेरिस से किसानों की तुलना नहीं की जा सकती। इन देशों का साहित्यिक, सामाजिक और राजनीति विकास चरमसीमा तक पहुँच गया है, पर ये किसान मोह और अन्धकार के पर्दे से ढँके हैं। देश के लिए प्राणों की बाजी लगाने की बात तो दूर रही, ये लोग यह भी नहीं जानते कि देश किस चिड़िया का नाम है? इन बातों पर अच्छी तरह गौर करने पर भी मेरे मन में एक दैव-वाणी सुनायी देने लगी तथापि ये भोलेभाले, अन्धकार के गर्त में गिरे हुए मनुष्य केवल प्रेम के ही पात्र नहीं हैं, श्रद्धा केभी योग्य हैं।

मैं इस बात पर गौर से सोचने लगा कि आखिर इनके प्रति मेरे हृदय में इतनी श्रद्धा क्यों पैदा हो गयी है? सोचने के बाद मेरी हृदय-तंत्री से यह आवाज़ निकली कि इनके दिल में एक अनमोल वस्तु, एक सरल विश्वास का भाव है। यही मनुष्य की चिर साधना की सम्पत्ति है। अगर

मैं इसको छिपाना न चाहूँ तो मुझे कहना पड़ेगा कि मेरी समझ में उनके इस सरल भाव की अपेक्षा मनोहर वस्तु कोई भी नहीं है।

यह एक ऐसी अनुपम सरलता है, जिसके नष्ट होते ही सभ्यता का सारा सौन्दर्य खाक में मिल जायगा, क्योंकि इसके बिना स्वास्थ्य रसातल को चला जायगा। मनुष्य प्रकृति का स्वास्थ्य सरलता ही है। इसके बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं रह सकता!

जितना खाना खाया जाता है, वह अच्छी तरह हजम होने पर ही सेहत अच्छी रहती है। चरपरा मसालेदार तथा तर-बतर पदार्थ को ही स्वास्थ्य नहीं कहते।

हृदय की सरलता और मन का स्वास्थ्य किसे कहते हैं? इसका एक मात्र उत्तर सभी ज्ञान और विश्वास को सम्पूर्णरूप से पचाकर स्वभाव के साथ मिलाना है। तरह-तरह के ज्ञान और विचारों को मन का स्वास्थ्य नहीं कहते।

आजकल के गँवार जिन ज्ञान और विश्वासों को लेकर अपनी जिन्दगी बसर करते हैं, वे सभी इनकी प्रकृति के साथ मिल गये हैं। जैसे साँस और खून का संचार हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं रहता, वैसे ही इन सब बातों की जानकारी रखना उनका काम नहीं। वे लोग सरलता से जिस चीज को जानने की कोशिश करते हैं अथवा जिस चीज में आसानी से विश्वास कर सकते हैं, उसी में विश्वास करते हैं। यही कारण है कि उनके ज्ञान, उनके विश्वास और उनके काम के बीच सामंजस्य पैदा हो गया है।

इसको अच्छी अरह समझने के लिए एक मिशाल देता हूँ। मेहमान के आने पर वे लोग भी लौटाते नहीं। यथाशक्ति उसकी आवभगत करते हैं। इसीलिए वे किसी हानि को हानि और कष्ट को कष्ट नहीं

समझते। मैं भी किसी अंश में आतिथ्य को धर्म समझता हूँ, पर ज्ञान को ताख पर रखकर नहीं—ज्ञान की दृष्टि से समझता हूँ, विश्वास की दृष्टि से नहीं। मेहमान को देखते ही उसकी आवभगत के लिए हमारे रोम पुलकित हो उठते हैं। मन में तरह-तरह के तर्क और विचार उठने लगते हैं। इस विषय में किसी विश्वास के साथ हमारे मन का सामंजस्य नहीं होता।

परन्तु मनुष्य के स्वभाव के विभिन्न अंशों के अन्दर एक अटूट एकता का होना ही मनुष्यता का असली लक्ष्य है। हम देखते हैं कि छोटे-छोटे कीड़ों को काटने पर भी उनमें जान रहती है, उनका कुछ नुकसान नहीं होता; किन्तु जैसे-जैसे ये जीव उन्नति करते जाते हैं, वैसे-वैसे इनके अङ्ग-प्रत्यंगों की अधिकाधिक एकता होती जाती है। मनुष्य स्वभाव के भीतर विश्वास, ज्ञान और काम में विचित्रता का होना उन्नति की अत्यन्त निम्न सीढ़ी है। तीनों का अटूट सम्बन्ध मनुष्य की चरम उन्नति है। परन्तु जिस जगह विश्वास, ज्ञान और काम में विचित्रता एवं विभिन्नता नहीं होती, वहाँ अविलम्ब मेल हो जाता है। जितनी-आसानी से फूल सुन्दर हो जाते हैं, उतनी आसानी से जीवधारी सुन्दर नहीं हो सकते। जीवधारियों के विभिन्न विचित्र काम अङ्ग में सम्पूर्ण संयोग का होना अत्यन्त मुश्किल है। जन्तुओं के बजाय मनुष्य के भीतर इसकी पूर्णता और भी मुश्किल तथा दुर्लभ है। यही बात मानसिक प्रकृति में भी लागू है।

हमारे इस छोटे-से गाँव के किसानों की प्रकृति में जो एकता देखने में आती है, उसमें महत्ता और जटिलता कुछ भी नहीं है।

भोले-भाले किसानों को साधारण दो-एक कमियों को दूर कर सादा जीवन बनाने के लिए अधिक समाज-तत्व और ज्ञान-विज्ञान की जरूरत

हृदय हर क्षण आँसू ही बहाता रहता है। यूरोप के साहित्य से शान्ति के गीत और सहज सरल आनन्द एक दम निकालकर बाहर कर दिये गये हैं। केवल निराशा का विलाप बग़ावत का अट्टहास नजर आता है।

इस निराशा का विलाप और प्रमोद की मादकता का कारण यह है कि जब तक मनुष्य का हृदय इस विशाल सभ्यता के स्तूप में एक खूबसूरत एकता स्थापित नहीं कर सकता तब तक हँसी-खुशी के साथ वह अपनी गृहस्थी को नहीं चला सकता। सभी चीजें जड़ रूप में परिणित हो गयी हैं। केवल खूबसूरती अब भी स्थिर है। अब भी नयी सभ्यता की राजलक्ष्मी आकर खड़ी होने नहीं पायी है। काम, ज्ञान और विश्वास आपस में एक दूसरे को बराबर सता रहे हैं। एकता हासिल करने के लिए नही, वरन् विजय हासिल करने के लिए उनमें घमासान की लड़ाई छिड़ गयी है।

यह कहना ग़लत होगा कि सिर्फ पुरानी स्मृति में ही खूबसूरती है, नयी आशा में भी खूबसूरती है। किन्तु अभाग है कि यूरोप की नयी सभ्यता में अब भी आशा का संचार नहीं हुआ है।

बूढ़े यूरोप ने अनेकों बार आशाएँ की है। जिन तरीकों पर उसे पूरा भरोसा था, उसका कोई नतोजा नहीं निकला। बहुत लोग फ्रांसीसी उथल-पुथल को एक महान चेष्टा का व्यर्थ परिणाम समझते हैं। एक बार सबको यह विश्वास हो गया था कि आम लोगों को वोट का अधिकार मिल जाने से ही संसार के अधिक अनर्थ दूर होंगे। इस वक्त सभी लोग वोट देते हैं, पर बढ़ी हुई परेशानियाँ को जड़ से दूर करने के लिए कोई उत्सुकता नहीं ज़ाहिर करता। सभी लोगों को यक़ीन हो गया था कि स्टेट के ज़रिये मनुष्य के सभी संकट दूर हो जायँगे। इस वक्त पंडित लोग आशंका करते हैं कि स्टेट के जरिए संकट दूर करने

की कोशिश करने से लाभ के बदले हानि होने की संभावना है। कपड़े की मशीन, कोयले की खान और विज्ञान शास्त्र के ऊपर किसी-किसी का विश्वास होता है; पर उस पर से भी शक नहीं मिटता। कुछ महान लोगों का कहना है कि कलों द्वारा लोगों में पूर्णता नहीं आती। आज का यूरोप कहता है—उस पर उम्मीद न रखो, भरोसा न करो। सिर्फ एक बार परीक्षा कर लो।

नयी सभ्यता ने मानों बूढ़े से शादी की। उस बूढ़े पति के पास धन-दौलत है, परन्तु जवानी नहीं। वह अपनी हजारों जानकारियों से पुराना हो गया है। दोनों प्रेम-पाश में नहीं बँधते, घर में हमेशा सिर्फ कहल और अशान्ति रहती है।

इन्हीं बातों की टिप्पड़ी करता हुआ मैं इस क्षुद्र पल्ली गाँव की सम्पूर्णता की खूबसूरती का दूना आनन्द लूट रहा हूँ, तौभी मैं इतना अन्धा नहीं कि यूरोप की सभ्यता की मर्यादा न समझूँ। एकता का पूरा आदर्श दो जुदी-जुदी चीज़ों को मिलाकर एक कर देना है और दो विचारों को एक रंग में ढालकर सुशोभित कर देना है। इसलिए अचरज में भी ऐक्य सौन्दर्य है। इससे एकता की खूबसूरती और पूर्णता बढ़ती होती है। आजकल यूरोप में अलगाव का ज़माना आया है। यही कारण है कि चारों तरफ विच्छेद् और वैषम्य का दौरदौरा है। जब एकता का ज़माना आवेगा, तब इस बड़ी ढेर में बहुत कुछ झड़कर गिर जायगा और जो कुछ बचा रहेगा, वह परिपक्वहो होकर एक खूबसूरत सभ्यता बन जायगी। एक अदना नतीजा में ही अनुष्ठान की समाप्ति हो जाने पर एक खास शान्ति, सुन्दरता और निर्भयता रहती है और जो लोग मानव-प्रकृति की क्षुद्र एकता से छूटकर बृहद विस्तार की ओर जाते हैं, उन लोगों को अनेकों विघ्न-बाधाओं, अशान्ति, विप्लव

गया है। वे सरलता की यह पुरानी सुषमा सबको दिखाने लिए बहुत लालायित हो रहे हैं। परन्तु वह सुषमा इतनी कोमल है, कि उसका व्यक्त करना मेरी ज़बान के बाहर है। यदि कोई बिना देखे उस सुषमा की हँसी उड़ाये, तो मैं विवश हूँ।

मैं अखबार के इन टुकड़ों को पढ़ता था और सोचता था कि ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाईबिल में लिखा है कि नम्रता रखनेवालों का ही इस जमीन पर अधिकार रहता है। यहाँ तो मैं जितनी नम्रता देखता हूँ, उससे स्वर्ग का अधिकार भी मिलना संभव है। पृथ्वी पर सौन्दर्य बढ़कर और कोई दूसरी चीज नम्र नहीं है। जो जबरदस्ती कोई काम सिद्ध करना नहीं चाहता, आगे चलकर संसार पर उन्हीं का अधिकार होता है। आज यह गाँव में वास करनेवाली सुन्दरी सरलता नगर में वास करने वाली नयी सभ्यता के एक बालक का मन चुपके से हरती है। एक समय ऐसा आवेगा, जब वह समस्त सभ्यता की रानी बन बैठेगी। हो सकता है, कि अभी ऐसा बनने में देर हो, परन्तु आखिर में अगर सभ्यता सरलता के साथ शामिल न हो जाय, तो यह अपने पूरेपन के आदर्श से गिर जायगी।

हम पहले ही कह चुके हैं कि भाव-सौन्दर्य स्थायित्व के ऊपर निर्भर रहता है। पुरानी स्मृति में जो एक तरह की सुषमा देखी जाती है, उसका कारण अप्राप्यता नहीं है। हृदय बहुत समय तक उस पर निवास करने पाता है, इसलिए हजारों कल्पना के सूत्रों को फैलाकर उसको अपने में शामिल कर लेता है, और उसकी मधुरता बढ़ जाती है। पुराने घरों और पुराने देवालयों की खूबसूरती का खास कारण यह है कि बहुत दिन तक स्थायी रहने के कारण वह आदमी के साथ बहुत मिल गये हैं! काम में व्यस्त मानव

हृदय के संश्रव से उनके अंग-प्रत्यंग में चेतना का संचार हो गया है। समाज के सभी तरह के विच्छेदों को दूर कर वे समाज का एक अंग हो गये हैं। यह मेल ही उनकी खूबसूरती है। स्त्री-जाति ही मानव समाज में सबसे पुरानी है। मनुष्य नानाप्रकार के कामों, विविध अवस्थाओं और विविध परिवर्तनों के अन्दर से चपल भाव से बहता हुआ आ रहा है और स्त्रियाँ स्थायी भाव से सिर्फ माता और पत्नी रूप से विराजती हैं, कोई आन्दोलन और उथल-पुथल उन्हें डिगा नहीं सकता। यही कारण है कि समाज के हृदय में इतनी जल्दी और इतने कलापूर्ण ढंग से स्त्री घुसने में समर्थ हुई है। इतना नहीं, बल्कि समाज के कार्य, भाव और शक्ति के साथ वह इतने अच्छे ढंग से एक हो गयी है। और यही कारण है कि उसे यह न मिलनेवाली एकता हासिल करने लिए उसे काफी समय मिलता है। इसी तरह जब दीर्घ समय के स्थायित्व का सहारा लेकर तर्क, ज्ञान और युक्ति बारी-बारी से संस्कार और विश्वास के रूप में परिणत होते हैं, तभी उसकी खूबसूरती विकसित होती है। तब वे खम ठोंककर खड़े हो जाते हैं। उसके अन्दर जो अनगिनत जीवाणु मौजूद रहते हैं, वे मनुष्य के बहुत दिन के बाद आनन्द, रोशनी और आँसुओं की वर्षा से अंकुरित होकर उसे ढक लेते हैं।

यूरोप में तो आजकल एक नयी सभ्यता का ज़माना आया है। उसमें क्रम से नये-नये विज्ञान, नये-नये विचार आविष्कृत होते जा रहे हैं। यंत्रकलाविद और औजारों की भरमार होती जा रही है। उन्हें रखने के लिए गोदाम नहीं मिलते। तूफानी रफ्तार के कारण इस सभ्यता में प्राचीनता आने नहीं पाती।

परन्तु अचरज है कि इतने बड़ेधूम-धड़ाका के भीतर भी मानव-

नहीं होती। इनके भीतर एक ऐसी सुन्दरता है, जिससे चित्त आकर्षित हो जाता है। और वही सुन्दरता क्षुद्र काम के भीतर से कमल की तरह खिलकर सारे गर्वित सभ्य समाज को एक आदर्श दिखला देती है। यही कारण है कि लन्दन और पेरिस की सभ्यता की गूँज के बावजूद भी मेरा हृदय अपने गाँव की ओर सदा लालायित रहा।

पल्लीग्राम चिन्ताओं के बावजूद भी तानपुरा के मीठे शब्द की तरह सदा नया-नया आदर्श खड़ा किया करता है। मैं सदा उस पर मोहित रहता हूँ, उसकी छटा मेरी आँखों में समाई रहती हैं। इस गाँव से यह आवाज निकलती है कि यह ठीक है कि मैं एक छोटा-सा गाँव हूँ, मेरे पास लुभानेवाली कोई चीज नहीं; परन्तु मैं छोटा होते हुए भी पूर्ण हूँ। इसलिए दूसरी सभी कमियों के होते हुए भी मुझमें एक खास तरह की मधुरता एवं मोहकता है। इसे कोई इन्कार नहीं कर सकता। मेरे छोटा होने से लोग भले ही तुच्छ समझे, परन्तु अपनी सम्पूर्णता के कारण सुन्दर हूँ और यही सुन्दरता तुम्हारा आदर्श है।

संसार में बहुतेरे ऐसे आदमी हैं जो मेरी बात सुनकर हँसे बिना नहीं रह सकते, तौभी मैं कहने का एहसास करूँगा कि किसानों के मलीन चेहरे पर मैं एक रमणी सुलभ सौन्दर्य का अनुभव करता हूँ। मुझे स्वयं अचरज हो गया है और सोचता हूँ कि यह सौन्दर्य कहाँ से आया। मुझे इसका एक जवाब भी सूझा है।

जिसकी प्रकृति किसी खास भाव को स्थायीरूप से अपना लेती है, उसके चेहरे पर वह भाव धीरे-धीरे एक मलिन होनेवाली आभा अङ्कित कर देता है।

ये गाँववाले पैदा हुए तभी से कई एक भावों की ओर स्थिर नजर से लक्ष्य कर रहे हैं। इसलिए इन भावों ने इनकी दृष्टि में अपने

को अंकित कर देने का बहुत अच्छा अवसर पाया है। इस वजह से इनकी दृष्टि से एक करुणायुक्त मधुरता टपकती है। इनके चेहरे पर हमेशा खुशी की रेखा खिंची रहती है।

जो लोग सभी धर्म-विश्वासों पर ही शक करते रहते हैं, उनके चेहरे पर बुद्धि की एक तीक्षणता झलकती है, परन्तु वह भाव के गंभीर स्निग्ध-सौन्दर्य से बिल्कुल जुदा है।

मैं जिस नदी में नाव ले गया था, उसमें धारा बिल्कुल नहीं थी। इसका कारण उसमें कमल, सेवार आदि तरह-तरह के फूल खिले हुए थे। इस साधारण सत्य पर गौर करने पर मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि जब हमारी भाव रूपी धारा में स्थिरता नहीं रहती, तब उसमें तरह-तरह के सौन्दर्य-कुमुद विकसित होने का अवसर नहीं पाते।

यदि हम पुराने यूरोप की नये अमेरिका से तुलना करें तो नये अमेरिका में सबसे अधिक इस भाव की कमी पाई जाती है। अमेरिका में चञ्चलता, उज्ज्वलता और कठिनता आदि सभी बातें मिलती हैं, पर भाव की गम्भीरता का नामोनिशान भीं नहीं मिलता। वह हद से ज्यादा नया है। भाव को विकसित करने का उसे मौका ही नहीं मिला है। अभी वहाँ की सभ्यता मनुष्य के हृदय से मिलकर अपने आपको अनुरंजित नहीं कर सकी है। इसमें कहाँ तक सचाई है, यह मैं कह नहीं सकता, परन्तु सुनता तो ऐसा ही हूँ। और इस देश के साहित्य की सरलता को देखकर मेरा अन्दाज भी यही है। पुराने यूरोप में अनेकों पुराने भाव अंकुरित होकर एक अजीबो-गरीब सुषमा से सँवारे रखते हैं। अमेरिका में मधुरता एवं लावण्य का अंकुर नहीं उगा है।

हमारे इन खेतिहरों के हृदय में अन्तराकृति का यह अंकुर उग

और बीहड़ रणक्षेत्र से होकर साहसपूर्व के आगे बढ़ना पड़ता है। परन्तु वे ही इस संसार में सच्चे कर्मवीर समझे जाते हैं। अगर वे इस मैदाने जंग में खेत भी आते हैं, तो भी उनकी कीर्ति अजर-अमर रहती है। इस दुनिया में उनका नाम सदा रोशन रहता है। इस बहादुरी, तेज तथा खूबसूरती के इस मिलन से ही ठीक पूर्णता आती है। अगर इनमें अलगाव रहा, तो सभ्यता अधूरी रह जाती है। तो भी हम लोग इस बात को खम ठोककर नहीं कह सकते कि यूरोप की सयभ्ता अधूरी है। और अगर ऐसा कहें भी तो किसी पर खास चोट नहीं पहुँचती। यूरोप हमें सभ्यता दौड़ में पीछे समझता है, इससे हमें चोट पहुँचती है, क्योंकि वह हमारा कर्णधार हो रहा है।

मैं यूरोप से बहुत दूर इस पल्ली के एक सुनसान भाग में बैठा हुआ। अपने सीधे-सादे तानपूरे के इन चार तारों से सुन्दर सुर मिलाकर यूरोप की सभ्यता से कहता हूँ, तुम्हारे तारों का सुर अभी ठीक मिला नहीं और साथ ही अपने तानपूरे से भी कहता हूँ कि तुम भी दो-चार सुरों के अविरत झंकार को ही सम्पूर्ण संगीत समझ सन्तुष्ट होकर न बैठे रहो, बल्कि अपने सुर को और भी सुन्दर एवं मधुर बनाने में जुटे रहो। यदि ऐसा करने में मशगूल रहे तो बहु संभावना है, आगे चलकर तुम्हारी यह बेसुरी रागिनी कल महासंगीत में परिणत हो जाय। पर अफसोस! तुम्हारे एक-एक तार से मूर्त्तिमान संगीत निकल रहा है। उसको निकाल बाहर करना प्रतिभा के लिए भी संभव नहीं है।

मनुष्य

निर्झरिणी भोर ही में मेरी कॉपी सामने रखते हुए बोली—यह तुमने क्या लिखा है ? वह बात तुमने मेरे मुख से क्यों कहलाई, जो मैंने कभी नहीं कही।

मैंने कहा—इसमें नुकसान ही क्या है ?

निर्झरिणि ने कहा—मैं ऐसी बात कभी नहीं कह सकती। अगर तुम ऐसी बात मेरे नाम से लिखते हो जो मैं कहूँ या न कहूँ, पर मेरी ज़बान से निकलना मुमकिन हो, तो मैं इतनी शर्मिन्दा न होती, परन्तु मैं देखती हूँ कि तुम एक किताब लिखकर मेरे नाम से चलाना चाहते हो।

मैंने कहा—तुमने हम लोगों से कितनी बातें कहीं हैं, यह तुम कैसे समझ सकती हो ! तुम्हारी बातों की भरमार है। तुम्हारी सारी ज़िन्दगी से तुम्हारी बातों की संख्या अपरिमित हो जाती है। तुम्हारी उन अव्यक्त बातों को मैं छोड़ नहीं सकता।

निर्झरिणी यह सुनकर चुप हो रही। मेरी बात समझ सकी या नहीं, यह मैं कह नहीं सकता। शायद मेरी बातें समझ गयी थीं, तो भी मैंने फिर कहा—तुम एक जीती-जागती मूर्त्ति हो। हर घड़ी नये-नये भावों से अपने आपही ज़ाहिर करती हो। अपनी वास्तविकता, अपनी खूबसूरती और अपने अस्तित्व के विषय में किसी का विश्वास पैदा कर देने के लिये, तुम्हें कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती; किन्तु लिखने में उस सत्य को साबित करने के लिए बहुतेरे तरीकों का सहारा लेना पड़ता है। नहीं तो प्रत्यक्ष के साथ मुकाबिला करने में अप्रत्यक्ष टिक नहीं सकता।

मैंने तुम्हारा वर्णन बहुत संक्षेप में किया है, मैंने तुम्हारे विषय में बढ़ाकर नहीं लिखा है। मैंने तो तुम्हारी सारी बातों का सार संग्रह कर पाया है। अगर ऐसा न होता तो तुमने जो बात मुझसे कही थी, उसको मैं दूसरों तक नहीं पहुँचा सकता था। अगर मैं ऐसा न करता तो तुम्हारे बारे में लोगों को कम जानकारी हासिल होती।

निर्झरिणी मुँह फेरकर एक किताब के पन्ने उलटती हुई बोलीं—तुम हमें कुछ प्यार करते हो, इसलिए हमारे में तुम्हारी इतनी ऊँची धारणा है। सच पूछो तो मैं इस लायक नहीं हूँ।

मैंने कहा—मेरा क्या तुम्हारे प्रति इतना स्नेह है कि तुम जितनी हो उससे ऊँची नज़र से मैं तुम्हें देखता हूँ।

किसी आदमी के सभी गुणों का कौन आदर कर सकता है? भगवान के समान किसके पास ऐसा उदार स्नेह का खज़ाना है।

पृथ्वीराज एक बारगी व्याकुल होकर बोल उठे—यह तुमने कैसी बात छेड़ दी। निर्झरिणी ने किसी दूसरे ही मर्म से यह सवाल किया था और तुमने किसी दूसरे ही मर्म से जवाब दिया।

मैंने कहा—यह बात तो मैं अच्छी तरह समझता हूँ, परन्तु बातचीत के दौरान में ऐसे अप्रासांगिक जवाब-सवाल हुआ ही करते हैं। मन एक ऐसे गुह्य चीज के समान है कि उसमें जिस जगह पर प्रश्न रूपी चिनगारी जा पड़ती है, वहाँ तो कुछ भी नुकसान नहीं होता, बल्कि कुछ दूर के स्थान पर एकाएक जल उठता है। मंत्रणा-सभा में बाहरी लोगों का आना मना रहता है, परन्तु एक बड़े समारोह के समय जो आता है, उसी को आदर-सत्कार से बुलाकर बैठाया जाता है। वैसे ही हमारी बातचीत एक समारोह के समान है। वहाँ अगर कोई अप्रासांगिक बात निकल पड़ती है, तो उसे तुरन्त आदर पूर्वक ग्रहण करना

पड़ता है। अगर उसे हम हँसते हुए ग्रहण न करें, तो हमारे समारोह का सारा मज़ा किरकिरा हो जायगा।

पृथ्वीराज ने कहा—मुझसे ग़लती हुई। तुम जो बात कहना चाहते थे, वही कहो। 'रा' के उच्चारण से राम की याद आ जाने के कारण प्रह्लाद रो पड़ते हैं, उनके मुख से दूसरा अक्षर ही नहीं निकलता। एक सवाल के सुनते-न-सुनते आपके दिमाग में जब दूसरा ही जवाब उठ जाता है, तो ऐसी हालत में एकदम भी बढ़ना मुश्किल है। लेकिन प्रह्लाद के स्वभाव के आदमियों को उनके मन के मुताबिक ही चलने देना अच्छा है। जो आपको अच्छा लगे उसे कहे चलिये।

मैंने कहा—मैं यह कह रहा था कि हम जिसे मुहब्बत करते हैं, उसी के भीतर हम सारी दुनिया को देखते हैं—अनन्त से जान-पहिचान होती है। जीव के भीतर अनन्त का अनुभव करने ही का नाम मुहब्बत है। प्रकृति के अन्दर अनन्त का अनुभव करने का नाम सौन्दर्य सम्भोग है। मुझे एक बात अभी याद पड़ी कि सारे वैष्णव-धर्म में यह गंभीर तत्व मौजूद है।

यह सुनकर पृथ्वीराज मन-ही-मन सोचने लगे, कैसी बला सिर पर आयी! तत्व की बात कहाँ से आ धमकी। निर्झरिणी और प्रकाशवती भी तत्व की बात सुनने के लिए विशेष इच्छुक नहीं जान पड़ती थीं। परन्तु कोई बात जब मन के अन्धियारे से अचानक निकल पड़ती है, तब भाव का बहेलिया अपने-अपने अभ्यास के अनुसार अपनी ताकत भर उसका पीछा करता है। उसे वश में रखने के लिए भावुक बकता जाता है और तब उस समय लोग यह समझते हैं कि वह दूसरे लोगों को तत्व का उपदेश दे रहा है।

मैंने कहा—वैष्णव-धर्म धरती के सभी प्रेम-सम्बन्धों के अन्दर ही

परमात्मा को अनुभव करने की कोशिश करता है। जब वह गौर करता है कि अपनी औलाद को देखकर मां फूले नहीं समाती, तब इस मानव-रूपी फूल को अपनी प्रेम-लता से वेष्टित कर अपने हृदयरूपी कली को खिला देता है और अपनी सन्तान के अन्दर अपने भगवान को स्थापित कर उसकी आराधना करने लगता है। जब इस बात को गंभीरता पूर्वक सोचता है, कि नौकर अपने मालिक के लिए जान दे देता है, दोस्त के लिए दोस्त अपने स्वार्थ को धक्का पहुँचा देता है, प्रेमी प्रेमीका के लिए अपना सब कुछ क़ुरबान करने के लिए बेचैन रहता है, तब वह इन सारे आदर्श प्रेमियों के अन्दर एक अलौकिक ऐश्वर्य का अनुभव करता है।

पृथ्वीराजने कहा—मैं ज्यों-ज्यों यह सुनता हूँ कि सीमा के अन्दर असीम और प्रेम में अनन्त का निवास है, त्यों-त्यों ये बातें मेरी समझ के परे होती जाती हैं। पहले मेरा ख़याल था कि ये बातें अच्छी तरह मेरी समझ में आती हैं, परन्तु अब मैं देखता हूँ कि अनन्त और असीम शब्द मेरे विचार-शक्ति से परे हैं।

मैंने कहा—भाषा की तुलना धरती से की जा सकती है। एक ही तरह का अनाज बार-बार बोने से खेत की ताक़त नष्ट हो जाती है। 'असीम' और 'अनन्त' ये दोनों शब्द अधिक व्यवहार से पुराने हो गये हैं, इसलिए हमेशा और हर जगह इनका प्रयोग उचित नहीं है। मातृ-भाषा के लिए कुछ अनुग्रह रखना जरूरी है।

पृथ्वीराजने कहा—भाषा के लिए तुम्हारा आचरण तो उदार नहीं नज़र आता।

पवनदेव अभी तक मेरी कॉपी पर दृष्टिपात कर रहे थे। उसे समाप्त कर बोले—यह तुमने क्या लिखा है? तुम्हारी डायरी के ये पात्र

आदमी हैं या सचमुच भूत ही हैं! देखता हूँ कि ये पात्र अच्छी-अच्छी बातें कहते हैं, पर इनकी शकल-सूरत कहाँ है?

मैंने उदासीन भाव से कहा—क्यों, बताओ तो सही?

पवनदेव ने कहा—क्या तुमने समझ लिया है कि आम के बनिसबत अमावट ही अच्छा है! यदि आम की गुठली और छिलका को छोड़ भी दिया जाय तो वह गन्ध और लुभावनी शकल कहाँ है? तुम सिर्फ अमावट ही लोगों को चखाओगे और आम को शकल कहाँ हवा खाने जायगी!

तुमने हमारी अर्थ-रहित बातों को कथा के प्रसंग से निकाल कर एक ऐसी बेजान मूर्ति के रूप में खड़ी कर दी है, जो कि अनबोलता बन गयी है, जबान नहीं हिला सकती। मैं केवल कुछ पढ़े-लिखे लोगों की वाहवाही से ही सन्तोष कर जाना नहीं चाहता, वरन् सर्व साधारण में रह कर ही जिन्दा रहना चाहता हूँ।

मैंने कहा—इसके लिए क्या करना पड़ेगा?

पवन ने कहा—मुझे क्या पता? मैंने केवल अपनी आपत्ति प्रकट कर दी। मुझमें जैसी खूबी है, वैसा स्वाद भी है। सार आदमी के लिए जरूरी भले ही हो, पर स्वाद ही सबको अच्छा लगता है। मैं इस पक्ष में नहीं हूँ कि लोग मुझको उपलक्ष्य बनाकर परस्पर दलील करें। मैं केवल यही चाहता हूँ कि लोग मुझे पहचान लें। मैं अपने प्रिय मानव-जीवन को छोड़कर किसी मासिक पत्र के एक निर्मूल लेख की शकल धारण कर पचड़े में पड़ना नहीं चाहता। मैं फिलॉसफिक तत्व नहीं हूँ और न छपी हुई पुस्तक। मेरे दोस्त, मेरे रिश्तेदार मुझे जिस दृष्टि से देखते हैं, जिस नाम से बुलाते हैं, मैं वही हूँ।

गगन अब तक एक चौकी के सहारे बैठे हुए दूसरी चौकी पर पैर फैला कर गंभीरता पूर्वक सोच रहे थे। वह अचानक बोल उठे—

क्या दलील, क्या तत्व सभी की चरम परिणति है। एक वसूल पर पहुँचना, उपसंहार तक बढ़ना, समाप्ति में ही उनका बड़प्पन है। लेकिन आदमी का स्वभाव भिन्न प्रकार का है। उसकी सर्वप्रथम वास्तविकता अमरत्व एवं असमाप्ति है। तेजी से बढ़ना ही उसके स्वभाव की विशेषता है। कौन ऐसा शक्तिशाली है, जो अमरत्व को घटा-बढ़ा सके, चाल को संक्षिप्त कर सके? अच्छे अच्छे शब्द अगर बिना कोशिश के आदमी की जबान पर रख दिए जाँय, तो ऐसा शक होगा कि उसके मन में चलच्छक्ति का अभाव है—उसके विकास की चाल जहाँ-की-तहाँ रुक गयी है। यद्यपि असम्पूर्णता, चेष्टा और भ्रम आदमी के अल्पज्ञता द्योतक है, तथापि आगे चलकर आदमी की खूबसूरती उन्हीं से प्रस्फुटित हो जाती है। वे मनुष्य की खूबसूरती के खास सबूत हैं। इनसे चिन्ता जीवन की एक चाल निर्दिष्ट हो जाती है। आदमी की बातचीत तथा चरित्र के भीतर अगर कच्चे रङ्ग न छोड़ा जाय, तो वे अत्यन्त संक्षिप्त हो जाँयगे, उनका विकास रुक जायगा। उनकी वही हालत होगी, जो किसी बड़े नाटक की विषय-सूची बताकर उसे बन्द कर देने से हो सकती है।

पवनने कहा—मनुष्य में व्यक्त करने की शक्ति कम है। इसीलिए प्रकट करते समय उसे निर्देश करना पड़ता है, अपनी भाषा में भाव का संयोग करना पड़ता है और अपने भाव के साथ चिन्ता का समावेश करना पड़ता है। लकड़ी का रथ बनादेने से रथ नहीं हो गया, बल्कि उसमें रथ की गति-शक्ति लानी पड़ेगी। किसी आदमी को लाकर खड़ा कर दो और फोनोग्राफ की तरह दो बातें कहला लो, उसी से उसके आदमीयत का परिचय नहीं मिल गया, इसके लिए उसमें मनुष्य के सारे गुण दिखालने होंगे, उसे चलना-फिरना होगा, स्थान बदलना होगा

और इस प्रयोजन से कि उसका बड़प्पन और महत्व अक्षुण्ण रहे, उसे अधूरा ही रखना होगा।

मैंने कहा—यही तो ज़रा मुश्किल है। बात को समाप्त कर समझाना होगा, अभी वह अच्छी तरह समझ में नहीं आयी, क्योंकि सभी तो होगा, परन्तु उसमें उद्यत भावभंगी कैसे दी जायगी?

निर्झरिणी ने कहा—इस टॉपिक को लेकर साहित्य में बहुत दिनो से बहस-मुबाहिसा होता आ रहा है। सवाल यह है, कि टॉपिक अधिक महत्वपूर्ण है अथवा उसे व्यक्त करने की मुद्रा प्रस्तुत करने का ढंग। मैंने इस बारे में कई बार विचार किया है, लेकिन किसी संतोषजनक वसूल पर नहीं पहुँच सकी। मेरी समझ से तो दलील की झोंक में जिसे हम प्रधानता देते हैं, वही उस समय के लिए प्रधान हो जाता है।

गगन ने एकबारगी सिर उठाकर कहा—साहित्य का विषय श्रेष्ठ है या उसकी मुद्रा? इस टॉपिक पर गौरव करने पर यही निर्णय करना पड़ता है कि टॉपिक देह है और मुद्रा है जिन्दगी। देह की वर्तमान में समाप्ति हो जाती है, परन्तु ज़िन्दगी एक चपल असमाप्ति के रूप में उसके साथ लगी हुई है! जो जितना नज़र आता है, उसके सिवा और भी कितनी ही आशापूर्ण नयी-नयी संभावनाएँ उसमें निहित हैं। जहाँ तक तुम विषय के रूप में जाहिर करते हो, वह जड़ देहमात्र है। वह एक सीमा में बँधा है और जितना तुमने अपनी भाव-भंगी के द्वारा उसमें संचारित कर दिया है, वह जिन्दगी है, और वही उसकी वृद्धिशक्ति का द्योतक है।

पवन ने कहा—साहित्य का विषय ही पुराना है, पर वह शकल धारण कर नया हो जाया करता है।

निर्झरिणी ने कहा—मेरी समझ में आदमी के बारे में भी यही बात

घटती है। कोई-कोई आदमी ऐसी प्रकृति लेकर ज़ाहिर होते हैं और उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे पुरानी मानव प्रकृति के विस्तार के नये आविष्कार करने वाले हैं।

प्रकाशवती ने कहा—हमारी प्रकृति का एक नमूना मन और चरित्र की यह आकृति ही है। इसके जरिए हम एक दूसरे की जाँच-पड़ताल और परिचय कर लेती हैं। मैं कभी ख़याल करती हूँ कि हमारी शैला क्या ही विचित्र है!

पवन ने कहा—लेकिन ओजस्वी तो जरूर है। तुमने जिस आकृति की बात कही है और जो विशेषरूप से हमारी अपनी ही है, मैं भी उसी की चर्चा कर रहा था। मैं चिन्ता के साथ-साथ आकृति की अस्तित्व-रक्षा करने का अनुरोध कर रहा था

प्रकाशवती ने हँसकर कहा—परन्तु सभी की शकल तो समान नहीं है। इसलिए अनुरोध करने के पहले खूब गौर कर लेना चाहिए। किसी शकल से आदमी का भाव परिस्फुटित होता है और किसी से छिप जाता है। हीरे की चमक हीरे में खुद प्रकाशित है, उसे ज़ाहिर करने के लिए हीरे को तोड़कर उसमें से चमक बाहर नहीं निकालनी होती है। मुझ सरीखें नीच प्राणियों के लिए यह आक्षेप शोभा नहीं देता कि साहित्य में हमारी आकृति का अस्तित्व नहीं रह जाता। कोई-कोई ऐसे होते हैं, जिनकी प्रकृति, जिनका अस्तित्व और जिनका सब कुछ हमारे वास्ते एक नयी शिक्षा तथा नये आनन्द का विषय प्रतीत होता है। उनको प्रकट करने के लिए उनकी सारी शकल-सूरत को ज्यों-का-त्यों रख छोड़ना ही बहुत होता है। और कोई-कोई ऐसे भी होते हैं, जिनका छिलका निकाल कर अन्दर का भाग देखना पड़ता है, उनका गुद्दा बाहर निकालना पड़ता है। इसलिए उन्हें हमारे एहसान को मानना चाहिए।

क्योंकि कितने आदमी ऐसे हैं जो चरित्र का गुद्दा और उसका सार अंश प्रकट कर सकते हैं और कितने आदमी ऐसे हैं, जिनमें गुद्दा है ?

पवन ने हँसते हुए कहा—माफ करना प्रकाशवती, सपने में भी यह खयाल में नहीं उठा कि मैं तृण के समान तुच्छ हूँ । जब मैं अपने अन्दर देखता हूँ, तो ऐसा मालूम होता है कि मेरा अन्तःकरण खान का हीरा है। इस वक्त मैं इसी उम्मेद मैं बैठा हूँ कि कोई परखनेवाला जौहरी मुझे पहचान ले। धीरे-धीरे जितने दिन बीतते हैं, उतना ही मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है कि धरती पर जितनी जौहरी की कमी है, उतनी जौहर की नहीं। तरुणावस्था में धरती पर आदमी नजर ही नहीं पड़ता था। ऐसा प्रतीत होता था कि यथार्थ आदमी उपन्यास और महाकाव्यों में ही जगह बनाये हुए हैं, धरती पर केवल एक आदमी अवशिष्ट है । अब देखता हूँ कि बस्तियों में आदमी-ही-आदमी हैं। उन बस्तियों में जाकर, मानव हृदय की भीड़ में घुसकर उन्हें पहचानने की जरूरत है। अगर तुम आदमी के दिल को टटोलकर देखो, तो देखोगे कि मीटिंग में जिनके मुँह से बात नही निकलती, वे यहाँ बोलता हो गये हैं । समाज में जिन्हें लोग नफ़रत से देखते हैं, वहाँ पर उनकी अच्छी इज्ज़त होती है। धरती पर जो लोग अनावश्यक समझे जाते हैं, यहाँ उन्हीं लोगों का पौ-बारह है। भीम, अर्जुन, भीष्म और द्रोण तो महाकाव्य के नायक हैं, परन्तु हमारे छोटे-छोटे कुरुक्षेत्रों के अन्दर भी उनके आत्मीय स्वजन मौजूद हैं। उस आत्मीयता को प्रकट करनेवाला क्या कोई नया द्वैपायन अवतीर्ण होगा ?

मैंने कहा—न होने से कुछ बिगड़ता नही। आदमी अगर एक दूसरे को नहीं पहचानता तो एक दूसरे को कैसे प्यार कर सकता ? एक

जवान अपनी जन्मभूमि और अपने निकट सम्बन्धियों को छोड़ दूर देश में ८—१० रुपये तनख्वाह पर किरानी का काम करता था। मैं ही उसका मालिक था, पर इतना भी मुझे नहीं मालूम था कि वह हमारे यहाँ नौकर है। इसका कारण यह है कि वह एक मामूली आदमी था। एक दिन अचानक उसे हैज़ा हुआ। अपने सोने के कमरे से मैंने सुना कि वह 'चाची चाची' कहकर कातर स्वर से चिल्ला रहा था। इसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता कि उस वक्त सहसा उसका गौरवहीन जीवन मेरे सामने कितना बड़ा मालूम हुआ।

वह अज्ञात मूर्ख आदमी सारे दिन सिर नीचे किये लिखा करता था। उसकी ज़िन्दगी कैसी हीन बन गयी थी। लेकिन उसे भी किसी विधवा चाची ने अपनी स्नेह-धारा से सींचकर लालन-पालन किया था। शाम को जब वह थका-माँदा अपने निवास-स्थान को लौटकर अपने हाथ से रोटी पकाता, उस वक्त जब चावल फटकराकर नहीं पकता, तब तक क्या वह आग की ओर ताकते हुए अपनी स्नेहमयी चाची को नहीं याद करता था? एक दिन उसकी नकल में भूल हो गयी। जोड़ सही नहीं मिला, उसके ऊपरवाले कर्मचारी ने बहुत फटकारा और अनादर किया। क्या उस दिन प्रातः उसे चाची की पीड़ा की सूचना न मिली थी? इस नगण्य आदमी के हर रोज़ के समाचार को जानने के लिए क्या उस पवित्र हृदय चाची के दिल में कम उत्कंठा होती थी? इस ज़वान के प्रवास के साथ क्या थोड़ी करुणा और कातरता थी?

उस रात को अचानक यह गुल होती हुई शिखा एक अनमोल महिमा से मेरे सामने दीप्त हो उठी। मैं समझ गया कि अगर इस नगण्य आदमी को किसी तरह बचा सका तो मैं एक बड़ा काम करने में समर्थ होऊँगा। मैंने तमाम रात बिना पलक मारे उसकी सेवा की, परन्तु

चाची की सम्पत्ति को चाची के यहाँ लौट न सका। मेरा वह मुहर्रिर जाता रहा। द्रोण, भीष्म, भीम और अर्जुन बहुत महान आदमी हैं, लेकिन इस आदमी की भी कीमत कुछ कम नहीं है। उसकी कीमत का किसी कवि ने अन्दाजा नहीं लगाया, किसी पाठक ने मंजूर नहीं किया इसलिए उसकी कुछ कीमत न हो, ऐसी बात नहीं। एक प्राणी ने उसके लिए अपना सब कुछ लुटा दिया था। खाना-कपड़ा समेत उसे ८) माहवार मिलते थे। वह भी बारहों महीने नहीं। बड़प्पन अपनी ज्योति से स्वयं प्रकाशित हो जाता है। लेकिन हमारे सरीखे दीप्तिहीन आदमी को बाहरी प्रेमरूपी रोशनी से चमकना पड़ता है। चाची के प्रेम का मिसाल लेकर हम देख सकते हैं कि आदमी कैसे प्रेम से अचानक चमक उठता है। जहाँ अन्धेरे में कुछ भी नहीं देख पड़ता था, वहाँ प्रेमरूपी किरण पड़ने से अचानक देखा गया कि वह जगह लोगों से भरी हुई है।

निर्झरिणी मुस्कराते हुए बोलीं—तुमने तो पहले भी अपने विदेशी मुहर्रिर की बात सुनायी थी। न जाने क्यों, उसकी बात सुनकर हमारा देशी खानसामा नीहर याद आ जाता है। हालही में दो बच्चों को छोड़कर उसकी औरत मर गयी है। फिर भी वह काम करता है। दोपहर में पंखा खींचता है, पर अब उसका हौसला पस्त हो गया है। अब वह बहुत दुबला-पतला हो गया है। उसकी सूरत देखकर मुझे बहुत दया आती है। बहुत तकलीफ होती है, लेकिन यह तकलीफ सिर्फ उसके लिए मेरे मन में नहीं होती,वरन् इन्सानियत के लिए होती है। मैं लाख अपने मन को समझाता हूँ, पर वह इन्सानियत की यह हालत देखकर सदा आँसू बहाता रहता है।

मैंने कहा—इसका एक सबब है। और यह कि उस नौकर को जो तकलीफ है, वही तकलीफ इन्सानियत को है। सभी आदमी प्रेम करते

हैं और जुदाई तथा मौत से दुखी होते हैं। तुम्हारे इस पङ्खा खींचनेवाले नौकर के मलिन, ग़मगीन चेहरे पर सारे प्राणीमात्र का ग़म का अक्स खिंच गया है।

निर्झरिणी ने कहा—इतना ही नहीं, मेरे ख़याल में धरती पर जितनी तकलीफ है, उतनी रहम नहीं। कितनी मुसीबत ऐसी होती है जहाँ आदमी का ढाँढ़स काम ही नहीं कर सकता, और कितनी जगह अनावश्यक प्रेम की बाढ़ आ जाती है। जब देखती हूँ कि मेरा नौकर धीरज से चुपचाप पङ्खा झलता है, बच्चे फर्श पर लोटते हैं और गिर जाने पर चीख़ उठते हैं, तब बाप मुँह फेर कर चीखने का कारण ढूँढ़ने लगता है, पर पङ्खा छोड़कर जाने की हिम्मत नहीं करता। तब मुझे महसूस होता है कि आदमी की ज़िन्दगी में बहुत ही कम आराम लिखा है। और कुछ नहीं, तो पेट की चिन्ता ही उसे हमेशा सताया करती है। ज़िन्दगी में चाहे जितनी बड़ी दुर्घटना ही क्यों न हो जाय, मुट्ठीभर चावल के लिए उसे बिला नाग़ा काम करना ही पड़ेगा। कोई त्रुटि हो जाने पर कोई माफ नहीं करेगा। मैं जब ख़याल करती हूँ कि धरती पर ऐसे बहुतेरे आदमी हैं जिनकी मुसीबत और ग़म का हम कुछ समझते ही नहीं—जानते कि उन्हें भी तकलीफ होती है, वे भी आदमी है, उनको दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह काम में लगाकर वेतन चुका देते हैं, उनके प्रति हम सान्त्वना, दया और स्नेह नहीं दिखलाते; तब मुझे ऐसा लगता है कि धरती मानो एकदम घुप अँधेरे से ढँकी हुई है, हमारी मतलबी नज़र उसे देख ही नहीं सकती। किन्तु दरअसल में उस दीप्तिहीन देश के आदमी भी प्यार करते हैं और वह भी प्यार के योग्य है। मेरे मन में यह ख़याल उठता है कि जिस आदमी में गौरव नहीं, जो अपने आप को प्रकट नहीं कर सकता, यहाँ तक कि जो अपने आपको भी नहीं पहचानता,

गूँगे-बहिरे की तरह मुसीबत उठाता रहता है, उसे आदमी कहकर परिचय देना—अपनापा का भाव लाना, उस पर काव्य की रोशनी डालकर चमकीला बनाना आजकल के हमारे कवियों का फ़र्ज है।

पृथ्वीराज ने कहा—किसी समय पुराने ज़माने में सभी विषयों में जानकारी रखनेवालों का आदर बहुत था। उस समय इन्सानियत का कोई पहरुआ नहीं था। उस समय जिसमें ताक़त थी, तेज था, वह सारी दुनिया पर अपना अधिकार जमा लेता था। इस समय दुनिया हर प्रकार तरक्की कर गयी है; सभ्यता की इस दौड़ में आगे बढ़ गयी है; प्रबलता अधिक अंशों में बँट गयी है। इस समय शक्ति-रहित लोग भी दुनिया के एक बड़े अंश के साझीदार हो गये हैं। इस समय के काव्य उपासनाओं में भी द्रोण और भीष्म को छोड़कर इन्हीं गूँगीजातियों की ज़ुबान और भाव को कवियों ने प्रकट करना शुरू कर दिया है।

पवन ने कहा—नये उदय होते हुए साहित्यरूपी सूर्य की किरण पहले-पहल सबसे ऊँचे पहाड़ों की चोटी पर ही पड़ी थी। अब धीरे-धीरे नीचे की ओर छिटककर गरीबों की कुटियों को भी रौशन कर रही है।

मन

दिन का तीसरा पहर है और नदी का किनारा। मैं देहात के एक सुनसान कमरे में बैठा हूँ। यह कमरा एकतल्ले मकान में है। एक छिपकली घर के कोने में टिकटिका रही है। पंखे के छेद में एक गौरैया खोंता बनाने के लिए तिनका और सूखी घास बटोर कर ले आती है

और कचमच करती हुई फुर्ती से उसे सजा रही है। नीले आसमान के भीतर, ऊँची करार की आड़ में, उसकी खुली पाल का कुछ हिस्सा दिखायी पड़ रहा है। शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा चल रही है। आसमान दूध की तरह साफ़ है। दूसरे किनारे की सुदूर रेखा से लेकर मेरे बरामदे के सामने के घिरे बगीचे तक का मनोरम दृश्य सफेद सूरज की रोशनी में एक अजीब चित्रपट के समान झलकता है। क्या ही सुखमय जिन्दगी है। बच्चा जैसे माँ की गोदी में एक तरह की गरमी, एक तरह का आराम तथा एक तरह का स्नेह-स्पर्श महसूस करता है, वैसे ही इस पुरानी प्रकृति की गोद में बैठकर मैं एक तरह का आराम, महसूस कर रहा हूँ। इस तरह की ज़िन्दगी बसर करने में हर्ज ही क्या है? क्यों न मैं इसी तरह इस प्रकृति की गोद में खेलता रहूँ? कलम-काग़ज़ लेकर बैठने के लिए कौन मुझे प्रेरित कर रहा है? किस विषय में मेरी क्या राय है, किसे मैं पसन्द करता हूँ और किसे नहीं—इस बात को लेकर खम ठोककर लड़ने की क्या ज़रूरत है? यह देखो, मैदान के अन्दर कहीं कुछ न था। अचानक बवंडर उठा और धूल-पत्ती को लेकर रेस के घोड़े की तरह चक्कर काटता हुआ क्या ही चमत्कार दिखा गया! वह अपने पावों की अंगुलियों पर क्या ही अजीब अंगभंगी के साथ तनकर आसमान की ओर घूमता हुआ कुछ पल खड़ा हो फिर कूड़ा-करकट बहारता न जाने किस देश को जा पहुँचा। उसमें रखा ही क्या था? थोड़ी-सी गर्द-गुबार और राख-पात, जिसे उनसे चुराकर इकट्ठा कर लिया था, उनको लेकर वह अंगूरी लताओं की तरह झूलता हुआ नाच-कूद रहा था। इसी तरह वह बयाबान और सुनसान जगहों में घूमा फिरा करता है। उसका न कोई उद्देश्य है और न दर्शन। न उसका कोई मत है न तत्व! उसका न कोई समाज है, और न इतिहास के बारे में जानकारी।

धरती पर जो चीज़ें बेकार हैं, जिन्हें लोगों ने कूड़ा समझ फेंक दिया है, उन्हीं को एक हवा के झोंके से जगाकर पलभर के लिए जानदार और सुन्दर बना देता है।

मेरी ज़िन्दगी भी क्या सरल और मीठी होती अगर मैं भी इसी तरह इधर-उधर की चीज़ों को फूँक से उड़ाकर एक जैसी-तैसी इमारत खड़ी करके ज़िन्दगी का लट्टू नचाता हुआ इस दुनिया का स्वाँग करता! मैं अपने को धन्य मानता अगर मैं भी हँसी-खेल में सृष्टि रचता और शीघ्र ही उसे फूँककर उड़ा देता! चिन्तारहित, चेष्टारहित, लक्ष्य रहित ज़िन्दगी बिताता। इस अवनी-अंबर में ज़िन्दगी का बड़ेरा उठाता और मुट्ठी भर धूल हाथ में लेकर इन्द्रजाल करता। क्या ही सादा, क्या ही मीठी ज़िन्दगी होती। यही होता मोहित-हृदय का उदार उल्लास! ऐसा होने से तो कोई बात ही न हो। लेकिन खड़े-खड़े पसीना टपकाकर पत्थर-पर-पत्थर लादते जाने से मतों का स्तूप कुछ ऊँचा होने के सिवा उनसे कोई खास उपकार नहीं होता। उस स्तूप में न हरकत है, न प्रेम और न प्राण। उससे सिर्फ एक स्थूल-कीर्ति प्राप्त होती है। कोई उसको अचरज-भरी नजर से देखता है, कोई पैरों से ठुकराता है चाहे उसकी योग्यता कुछ न हो।

लेकिन मन रहते हुए भी इस काम से बिलगाना कठिन है। सभ्यता के अनुनय-विनय से मनुष्य ने मन नामक अपने शरीर के एक अंश को बढ़ावा देकर आसमान पर चढ़ा दिया है। इस समय अगर वह उस मन से पिंड छुड़ाना चाहता है, तो भी वह उसे नहीं छोड़ता; कसकर जकड़ रखा है।

लिखते-लिखते मैंने बाहर की ओर देखा। एक आदमी घाम के कारण सिर पर चादर ओढ़े, दाहिने हाथ में पलास के पत्ते पर थोड़ा-सा

मक्खन लिये रसोई घर की ओर जा रहा था। वह मेरा नौकर नारायण सिंह है। खूब मजबूत जवान है। उसके चेहरे पर हमेशा हँसी खेलती रहती है। उसकी प्रकृति उत्तम खाद पाये कटहल के पेड़ जैसी है। ऐसे लोग बड़े मिलनसार होते हैं। इन्हीं के साथ उसकी बनती है। प्रकृति और इनके बीच बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। इस विशाल वसुन्धरा से सटकर ये आराम से ज़िन्दगी बिता रहे हैं। इनको अपने अन्तःकरण के साथ कोई संघर्ष नहीं है। वह पेड़ जैसे जड़ से पत्ते तक अपनी खूबी लिए वर्त्तमान है। अधिक कुछ हासिल करने के लिए वह मगजपच्ची नहीं करता। वैसे ही मेरा मजबूत नारायण सिंह भी शुरू से आखिर तक अविकल नारायण सिंह है। उसके अन्दर कुछ भी विकार नहीं हुआ है।

अगर कोई कुतूहल प्रिय देवता उस कटहल के जड़ में एक बूँद 'मन' को छोड़ दे, तो महा अनर्थ खड़ा हो जाये। उस सरस ज़िन्दगी में एक अजीब आन्दोलन और परिवर्तन शुरू हो जाय। जब चिन्ताग्रस्त हो जाने पर उसकी हरी पत्तियाँ पीली पड़ जायें, और जड़ से लेकर डाली तक में बूढ़े के ललाट की तरह झुर्रियाँ पड़ जायें, तब कितने ही वसन्त आते-जाते रहें, उसकी पहली जैसी हरियाली नज़र नहीं आ सकती। और न उसकी डालियाँ ही पहले की भाँति टूट सकतीं। तब वह तमाम दिन एक पैर पर खड़ा होकर यही सोचता रहेगा कि भगवान ने मुझ पर पत्तियों का इतना बड़ा बोझ क्यों लाद दिया? मुझे पङ्ख क्यों न दिये! अगर्चे खूब तनकर खड़ा हूँ, तो भी ईश्वर की सुन्दर प्रकृति को देखकर यथेष्ट आनन्द नहीं हासिल कर सकता। अगर पंख होते तो उड़-उड़कर उसकी छटा देखता—देखता कि इस दिगन्त के परे भी कुछ है। देवता या आसमान के तारे जिस पेड़ की टहनी में खिले हुए हैं,

उसको किस तरीके से पकड़ा जा सकता है। मैं कहाँ से आया और कहाँ जाऊँगा—यह बात जब तक स्थिर नहीं हो जाती, तब तक पत्ते गिराकर, टहनी सुखाकर पत्थर की भाँति ध्यान में लगा रहूँगा। मेरा अस्तित्व दुबिधे में है। जब तक इन सवालों का ठीक-ठीक जवाब नहीं मिल जाता तबतक मुझे आराम नहीं, चैन नहीं। बरसात के बाद जिस दिन पहले-पहल सुबह सूरज निकलता है, उस दिन मेरे शरीर में कैसी बिजली दौड़ जाती है—कैसा आनन्द मिलता है, उसे जाहिर करने की शक्ति मुझमें नहीं है। और जाड़े के आखिर में फागुन के बीच, जिस दिन अचानक शाम को दखिनहीं हवा का एक झोंका बहता है, उस दिन इच्छा होती है—क्या इच्छा होती है, क्या कोई इसे बता सकता है?

अफ़सोस! अब कटहल की क्या ही शोचनीय हालत है। अब न उसमें फूल लगेंगे और न फल लगेंगे। इस पेड़ ने अपनी पहले जैसी हालत में पहुँचने की कोशिश की थी, उन्नति करना चाहा था—पर अब उसपर तो 'साधु न फ़कीर पर पोंगा' वाली कहावत चरितार्थ होती है। आखिर एक दिन अचानक ग़मगीन होकर उबल पड़ा—उसके अङ्ग-अङ्ग मानों बगावत करने पर तैयार हो गये। वह किसी सामयिक अखबार में लेख लिखने बैठा। टिप्पणी, जङ्गली समाज के बारे में असामयिक तत्वोपदेश इत्यादि भाव के उद्गार निकालने लगे। उसके अन्दर न तो अब पत्तों की खड़खड़ाहट रही, न पहले की छाया और न नस-नस में समाया हुआ सरसता ही अब शेष रहगयी है।

अगर कोई खौफनाक शैतान, साँप की तरह छिपे-छिपे मिट्टी के भीतर समा जाय और हज़ारों टेढ़ी-मेढ़ी जड़ियों के भीतर 'मन' को डाल दे, तो दुनिया के तमाम पेड़ पौदे सूख जायें। और सारी दुनिया

रेगिस्तान बन जाय और तमाम सुख-शान्ति काफी अर्से के लिए लुप्त हो जाय। यह ठीक ही है कि बागों में गाते हुए पक्षियों के गीत का कोई अर्थ नहीं लगा सकता और अक्षर रहित हरे पत्तों के बदले डाली-डाली में सूखे सफेद रङ्ग के मासिक पत्र, सम्वाद पत्र और विज्ञापन लटके हुए नहीं दिखायी देते !

यह भी ठीक ही है कि पेड़ के भीतर चिन्ता शीलता नहीं है। धतूरे का पेड़ कामिनी कुसुम की समालोचना कर यह नहीं कहने जाता कि तुम्हारे फूल में सुकुमारता है पर तेजस्विता नहीं है। बेर कटहल को यह कहने नहीं जाता कि तुम अपने को बड़ा समझते हो, पर मैं तुम्हारी अपेक्षा सीता फल (कोहड़ा) को बहुत ऊँचा आसन देता हूँ। केला नहीं कहता कि कम दाम पर सबसे बड़ा पत्ता देता हूँ। अरुई उसके साथ होड़ लगाकर उसकी अपेक्षा कम दाम पर बड़ा पत्ता नहीं बेंचती।

चिन्ता का सताया आदमी संयत रहता है। इस छोटी-सी मन रूपी चिनगारी को बुझाने के लिए समुद्र की प्रशान्त जलराशि की ज़रूरत होती है।

असल बात तो मैंने पहले ही कह दी है। उसे अब दुहराने की ज़रूरत ही नहीं। खाने-पीने, आजादी से रहने और जीवन धारण करने के लिए जितने बड़े मन की जरूरत है। उससे वह कहीं बड़ा हो गया है। इसीलिए प्रयोजनीय सभी कामों को पूरा करके देखते हैं, तो हमारे चारों तरफ़ बहुत-सा मन बचा रहता है। फलतः वह काहिल बनकर बैठे-बैठे डायरी लिखता है। दलील करता है, और अखबारों में लेख भेजता है। आसान को मुश्किल और सरल को जटिल बना डालता है। कुछ-का-कुछ समझ बैठता है। इससे वह एक ऐसा ऊल-जलूल मत

खड़ा करता है जो कभी समझ में आ ही न सके। ऐसे ही चक्करदार सवालों के पीछे पड़कर दुनिया का सभी काम काज-छोड़ देता है। यहीं तक हद नहीं होता, बल्कि बड़े-बड़े अनर्थ करने लग जाता है।

लेकिन मेरे श्यामनारायण सिंह का मन भी शरीर ही जैसा मजबूत है। उसकी जरूरत के साथ-साथ उसका मन बिल्कुल फिट हो जाता है। उसका मन उसको जाड़ा, पाला, गर्मी, रोग-शोक और शर्म से बचाता है। और उनचासों पवन-झकोरे से उसे हर समय उड़ाता नहीं रहता। मैं यह नहीं कह सकता कि एक-आध बटन के छेद से होकर छिप-छिपकर हवा उसके अन्दर घुसती ही नहीं और उसके मन को कुछ भी नहीं करती। मन का इतना स्पन्दन और इतनी चपलता ज़िन्दगी के सेहत के लिए बहुत जरूरी है।

अखण्डता

प्रकाशवती—सच पूछो तो आजकल तुम लोगों ने कुदरत के स्तव के साथ बहुत ज्यादती कर दी है।

मैंने कहा—देवी! क्या दूसरे का स्तव तुम्हें अच्छा नहीं लगता?

प्रकाशवती ने कहा—स्तव के सिवा जब मैं और कुछ नहीं पाती, तब स्तव का अपव्यय मुझसे फूटी आँख भी देखा नहीं जाता।

पवनदेव ने मुस्कराते हुए कहा—भगवति, और प्रकृति के स्तव और तुम लोगों के स्तव में अधिक फ़र्क नहीं। तुमने शायद ग़ौर किया होगा कि जो लोग प्रकृति स्तव के गीत लिखा करते हैं, उनमें अधिकतर तुम्हारे ही उपासक हैं।

प्रकाशवती ने घमंड के साथ कहा—अर्थात् जो लोग जड़ की पूजा करते हैं, वे ही हमारे भक्त हैं?

पवनदेव ने कहा—मेरे कहने का तुमने उल्टा अर्थ लगा दिया है, इसलिए मुझे सफ़ाई देनी होगी। हमारी भूत सभा के मौजूद प्रेसिडेन्ट श्रीभूतनाथ बाबू ने अपनी डायरी में मन नामक किसी उदण्ड स्वभाववाले जीव की बात लिखी है। उसको आपलोगों ने पढ़ा होगा। उसके ठीक नीचे ही मैंने कुछ बातें लिखी हैं। अगर आप लोग आज्ञा दें, तो पढ़कर सुनाऊँ।

पृथ्वीराज ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—देखो भाई पवन! लिखने-वाले और पढ़ने वाले के बीच जो सम्बन्ध होता है, वह असली सम्बन्ध है। अगर तुम अपनी इच्छा के मुताबिक़ लिखो और मैं अपनी इच्छा के मुताबिक़ पढ़ूँ, तो कोई बात ही नहीं रह जाती। जैसे मियान तलवार का सम्बन्ध है वैसे ही तुम्हारा-हमारा सम्बन्ध हो गया है। दूसरे शब्दों में हम दोनों का मत मिल गया। लेकिन तलवार अगर किसी दूसरी चीज़ में, जो उसे अपनाना नहीं चाहती, उसी प्रकार गंभीर सम्बन्ध क़ायम करने की कोशिश करे, तो उसका वह सम्बन्ध उतना कुदरती न होगा। लिखनेवाले और सुनने वाले का सम्बन्ध भी उसी तरह अस्वाभाविक है। सृष्टि रचने वाले से मेरी प्रार्थना है कि मेरे पापों के लिए चाहे जैसा दण्ड दे, परन्तु जन्मान्तर में मुझे डाक्टर का घोड़ा शराबी की औरत और प्रबन्ध लेखक का बन्धु बनाकर न भेजे।

गगन ने हँसी उड़ाते हुए कहा—एक तो बन्धु शब्द का अर्थ ही बन्धन है। उसके ऊपर अगर प्रबन्ध-बन्धन की रस्सी लटका दी जाय, तो बड़ी नाज़ुक हालत हो जाय।

प्रकाशवती ने कहा—कैसा गंभीर परिहास है! इस समझने के लिए योग्यता चाहिए। आप कृपया मुझे इस परिहास को समझने के लिए दो साल का समय दीजिए। ताकि इसको समझने के लिए मैं योग्यता प्राप्त कर लूँ।

यह सुनकर गगन खिलखिला उठे। हँसते-हँसते बोले—क्या मार्के की बात तुमने कही है! मुझे इस वक्त एक कहानी याद आ गयी।

निर्झरिणी ने कहा—क्या तुम लोगों की मंशा पवनदेव के लेख को सुनने देने की नहीं? पवन- तुम पढ़ते चलो, इनकी बातों पर खयाल मत करो।

निर्झरिणि की इस बात पर किसी ने आपत्ति नहीं की। यहाँ तक कि खुद पृथ्वीराज ने आले पर से डायरी लाकर रख दी और शान्ति के साथ सुनने लगे

पवन देव पढ़ने लगे—आदमी को विवश होकर पद-पद पर मन की मदद लेनी पड़ती है। इसलिए हृदय में केवल उसी को देख पाते हैं। मन हमारी बहुत ही भलाई करता है। परन्तु उसकी आदत ही ऐसी है कि वह हमारे साथ कभी भी हमारे साथ अच्छी तरह हिलमिल नहीं सकता। हमेशा ही झुँझलाया करता है—नसीहत करने आता, राय देता है, सभी कामों में ही दस्तान्दाजी करन चाहता है। ऐसा मालूम होता है कि वह पराया है। और धर बाँधकर घर का आदमी बनाया गया है। उसको छोड़ना भी मुश्किल है और उसे प्यार करना भी कठिन है।

ऐसा प्रतीत होता है मानो हिन्दुस्तानियों के देश में अङ्गरेज सरकार की तरह हो रहा है। हमारी आदत स्वदेशी है और उसका कानून फिरङ्गियों की तरह पेचदार है। वह भलाई करता है, पर अपना नहीं समझता। हम दोनों एक दूसरे को नहीं समझते हैं। हममें जो कुछ स्वाभाविक शक्तियाँ थी, उन्हें भी उसने अपनी शिक्षा के जरिए बरबाद कर दिया है। इस समय उसकी सहायता के बिना हमारा काम चलही नहीं सकता। ज़िन्दगी के हर क़दम पर सहायता के लिए हम उसका मुँह ताकते हैं।

फिरङ्गियों के साथ हमारे मन का कई बातों में मिलान है। इतने दिनों से वह हमारे मन पर कब्जा जमाये बैठा है। पर तोभी वह वहाँ का बाशिन्दा नहीं हुआ। वह हमेशा उड़ा करता है। ऐसा लगता है कि मौका पाते ही वह सात समुन्दर पार जा भगेगा। उसकी सबसे अजीबो ग़रीब समानता यह है कि तुम जितनाही उसके सामने जीहजूरी करोगे उतना ही उसका प्रताप बढ़ता जायगा और अगर तुम आँख तरेर कर सख्ती के साथ पेश आने पर तैयार हाजाओ, ईसाई मज़हब का अनादर कर चाँटा के बदले चाँटा रसीद करो तो वह नरम हो जायगा।

मन के साथ हमारी शत्रुता इतनी है कि जिस काम में उसका जितना ही कम हाथ होगा, हम उसका उतना ही आदर कर देंगे। यह सच है कि नीति शास्त्रों ने हठधर्मी की निन्दा की है, लेकिन दरअसल में उसके प्रति हमारा भीतरी अनुराग है। जो आदमी खूब सोच समझकर काम करता है, उसे हम पसन्द नहीं करते, लेकिन जो आदमी हमेशा निश्चिन्त रहता है—बिना लगाम की बातें करता है, आँख मूँद कर पाप कर बैठता है, उसे सभी गले लगाते हैं। जो आदमी

भविष्य को दृष्टि में रख कर धन इकट्ठा करता है, जरूरत पड़ने पर लोग उससे उधार लेने जाते हैं और भीतर-ही-भीतर उसकी निन्दा करते हैं, लेकिन जो आदमी अपने भविष्य को ध्यान में न रखकर पैदा किया हुआ धन आँख मूँद कर खर्च कर डालता है, लोग उसे बुलाकर उधार देते हैं और बहुत समय पाने की आशा छोड़ कर देते हैं। अक्सर हम विचार हीनता को ही उदारता कहते हैं और जो आदमी दृढ़ सङ्कल्प के साथ युक्ति का दीया लेकर टेढ़ेमेढ़े रास्ते को छोड़ कर नियम की पगडंडी पर चलता है, उसे दुनिया कंजूस आदि नाम से पुकारती है।

जिस चीज़ को देखकर हम मन का अस्तित्व भूल जाते हैं, उसी को हम चित्ताकर्षक एव मनोहर कहते हैं। मन के भार को जिस हालत में हम महसूस नहीं करते, उसी को कहते हैं—मौज। नशा खाकर पशु बन जाना अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना हमें मंजूर है, शराबी बन कर जेल की हवा खाना हमें मंजूर है इससे हमें मज़ा मिलता है। एक पल के लिए मन के प्रभुत्व से निकल भागने के लिए हम सब कुछ करने को तैयार हैं। मन अगर दरअसल में हमारा अपना होता, अगर वह हमारे साथ अपनापा बरतता, तो ऐसा उपकारी आदमी के प्रति हम इतनी कृतघ्नता करने क्यों जाते, उसका अस्तित्व लोप करने ही पर कमर क्यों कसते?

अक़ल के बजाय प्रतिभा को हम ऊँचा क्यों समझते हैं? अक़ल हररोज़, हर पल हमारे सैकड़ों कामों में अन्याय करती है, उसके बिना हमें जीवन धारण करना मुश्किल हो जाता है और प्रतिभा कभी-कभी हमारे किसी काम आती है और ज्यादा समय उससे हमें कोई लाभ ही नहीं होता। परन्तु अक़ल का सम्बन्ध मन से है। और प्रतिभा मन

के नियमानुसार न चलकर हवा की तरह आती है और चली जाती है। किसी की पुकार की अपेक्षा नहीं करती।

प्रकृति के भीतर मन नहीं है। इसलिए यह हमारे समीप इतनी मनोहर लगती है। इसमें एक के भीतर दूसरी कोई चीज़ नहीं है। हाथी के कन्धे पर बैठे हुए पिलवान (महावत) की तरह अपनी इच्छा का टहलुवा बनानेवाली कोई चीज़ इसमें नहीं है। मिट्टी से लेकर आकाश तक की इसकी लम्बी-चौड़ी गृहस्थी में कोई परदेशी दुष्ट बालक घुसकर के दुष्टता नहीं करने पाता।

प्रकृति अकेली, अखंड और अव्यग्र है। उसके असीम नीले ललाट पर बुद्धि की लकीर तक नहीं है। सिर्फ प्रतिभा की चमक हमेशा जगमगा रही है। जैसे अनायास एक युवती की जवानी विकसित होती है वैसे ही एक भयङ्कर आँधी उसकी अवहेलना करके—धोखादेकर उसे सुख-सपने की तरह तोड़-ताड़ कर चली जाती है। यह सब मानो अपने आप हो रहा है, उसमें प्रयास की जगह नहीं। वह इच्छा कभी आदर करती है, कभी चोट करती है, कभी अप्सरा की तरह गान करती है, तो कभी भूखी राक्षसी की तरह गर्जती है।

चिन्तित आदमियों में यह दुविधा-रहित इच्छा शक्ति एक बहुत बड़ा खिंचाव रहता है। राज भक्ति और प्रभुभक्ति इसके उदाहरण हैं। जहाँ राजा प्रजा की जान इच्छा पूर्वक ले और अपनी जान भी दे सकता है, उस राज्य में राजा के हित के लिए जितने आदमियों ने जान दी है, और देते हैं, उस तरह आजकल के नियम के धागे में बँधे हुए राजाओं के लिए जान देने के लिए अपनी इच्छा से प्रजा आगे नहीं बढ़ती।

जो लोग मनुष्य जाति के अगुआ बनकर सामने आते हैं, उनका मन दिखलाई नहीं देता। वे लोग किस विचार से कौन काम करते हैं,

यह बात एकाएक उनके कामो से समझ में नहीं आती। तथापि लोग अपने शक रूपी घुप अँधेरी खोह से निकलकर पतंग की तरह उनकी महत्व शिखा पर कूदकर अपनी जान देते हैं—दूसरे शब्दो में उन महात्माओ को आँख मूँदे अपना कर अपनी चिन्ता-शक्ति को रौंद डालते हैं। और ऐसी दशा में उन पर 'भइ गति साँप छुछुन्दर केरी'—वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है।

स्त्री भी प्रकृति के समान ही है। मन के बीच में आकर उसके दो खण्ड नहीं कर दिये हैं। फूल की तरह शुरू से आखिर तक उसका एक रूप है। इसीलिये उसकी चाल और आचार में ऐसी संपूर्णता है। इसीलिए शकी आदमियों के लिए स्त्रियाँ 'मरणं ध्रुव' लगती हैं।

प्रकृति की भाँति स्त्री में भी इच्छा-शक्ति है। उसके अन्दर विचार, आलोचना और युक्ति-तर्क कुछ भी नहीं है। कभी वह दोनो हाथों से दान करती हैं और कभी संहार करने में प्रलय-मूर्ति बन जाती है। भक्त जन हाथ जोड़कर उन्हें (रमणी को) प्रकृतिमयी, इच्छामयी और सब कुछ सुन्दर विश्लेषण से पुकार उठते हैं।

पवनदेव दम मारने के लिए रुके ही थे कि प्रकाशवती ने गंभीरता-पूर्वक कहा—वाह-वाह ! खूब किया, कमाल किया। लेकिन सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि एक शब्द भी मेरी समझ में नहीं आया। मेरी समझ में तुम जिसे मन और बुद्धि कहते हो, प्रकृति के समान मुझमें भी उनकी कमी है, पर मेरी तो किसी ने भी प्रशंसा नहीं की। तुममें प्रतिभा मौजूद है, और मुझमें खींच लेने की शक्ति है। इसका भी तो मैंने कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं पाया है।

प्रकाशवती ने पवनदेव से कहा—तुम तो मुसलमानों जैसी बातें करते हो। उन्हीं के क़ुरान में लिखा है कि स्त्रियों में आत्मा नहीं है।

निर्झरिणी चिन्तित होकर बोली—मन और बुद्धि को अगर तुम लोग एक ही अर्थ में व्यवहार करो और कहो कि हम उसी से वंचित हैं, तो तुम्हारे साथ मेरी राय मिलने की नहीं।

पवनदेव ने कहा—मैंने जो बात अभी कही, उसपर पूरी तरह से दलील नहीं किया जा सकता। पहले साल में गंगा की बाढ़ रेत की जो दीवार बना गयी थी, उस पर पहले इतनी ज्यादा रेत थी कि उस पर हल चलना मुश्किल था। परन्तु पीछे ज्यों-ज्यों पानी बरसा, उस पर मिट्टी पड़ी और वह दीवार हल चलाने लायक़ हुई। उसी तरह मैंने भी अपनी बातचीत की धारा में एक ऐसी बात खड़ी कर दी है। हो सकता है कि दूसरी बाढ़ में वह हट जाय और यह भी संभव है कि फिर से लगातार उस पर मिट्टी पड़ती जाय और उपजाऊँ हो जाय। चाहे जो कुछ हो पहले असामी की सभी बातें सुन ली जायँ, तब उसपर विचार हो।

आदमी का अन्तःकरण दो हिस्सों में बँटा है—एक हिस्सा अचेतन, वृहत्, गुप्त और निश्चेष्ट होता है और दूसरा सचेतन, सक्रिय। चपल और परिवर्तनशील होता है। उदाहरण के लिए महादेश और महा समुद्र। समुद्र में चपल भाव से जो कुछ जाता है उसका त्याग कर देता है और वही गुप्त पृथ्वीतल में इकट्ठा होकर दृढ़ और निश्चल रूप धारण कर जाता है। इसी तरह हमारी चेतना हर रोज़ जो कुछ लाती है, उसे फेंक देती है। वही संस्कार, याद, अभ्यास के रूप में किसी गूढ़ आधार का सहारा लेकर अचेतनरूप में राशिकृत होते जाते हैं। वह हमारी ज़िन्दगी और चरित्र की टिकाऊ दीवार है—आधार है। तह-पर-तह खोलकर कोई देखने नहीं जाता। बाहर से जो कुछ दिखाई पड़ता है अथवा भूडोल से जो गुप्त अंग देता है, बाहर निकल पड़ता है। उसी

को हम देख पाते हैं।

इस महादेश में ही हरे-भरे फल-फूल, सौन्दर्य और जीवन सहज ही खिल उठता है। देखने में तो यह निष्क्रिय एवं स्थिर प्रतीत होता है, किन्तु इसके अन्दर एक गूढ़ जीवनी शक्ति और सहज निपुणता छिपेतौर से काम कर रही है। समुद्र गोल और सम्पूर्ण हो जाता है। उसमें उत्तरोत्तर जितना ही तान जोड़ते जाओ, पर ताल में आकर सभी एक गोल और पूर्ण लकीर से घिर जाता है। बीच में एक अडिग केन्द्र का सहारा करके वृत्त अपने घेरे को बढ़ाया जाता है। इसीलिए आसपास जितनी चीजें होती हैं, उन सभी को वह बड़ी निपुणता के साथ अपने अन्दर खींच लेता है।

यह केन्द्र, जिसका अभी मैंने जिक्र किया है, बुद्धि नहीं है। यह एक स्वाभाविक खिंचाव-शक्ति है। यह एक ऐक्य विन्दु है। मन नामक चीज़ ज्योंही इसके भीतर आकर झाँकती है, त्योंही यह सुन्दर ऐक्य अलग-अलग होकर सैकड़ों में बँट जाता है।

गगन यह सुनकर अधीर हो उठे और एकाएक बोले—तुम जिसे ऐक्य पुकारते हो, उसी को मैं आत्मा पुकारता हूँ। उसका धर्म ही यह है कि पाँच चीज़ों को अपनी ओर खींचकर अपने साँचे में ढाल लेता है। और जिसे तुम मन कहते हो, वह अपने-आप पाँचों चीज़ों की तरफ खींचा जाकर अपने आपको और उन पाँचों चीज़ों को तोड़ डालता है। इसीलिए नीतिज्ञों ने कहा है कि आत्मयोग की पहली सीढ़ी है—मन को रोकना।

पवन देव ने अङ्गरेजों के साथ मन की जो तुलना की थी, वह यहाँ भी लागू है। अङ्गरेज आगे बढ़ता है और सभी चीज़ों को धर पकड़ता है। आज तक किसी को भी उसका अन्त नहीं मिला। सूर्य भी न

पा सके। वह भी उनके राज्य में उदय होकर आज तक नहीं डूबे। और हम लोग आत्मा की भाँति केन्द्रीभूत हो गये हैं। हम लोग बल से छीन लेना नहीं चाहते, अपितु चारों तरफ की चीज़ों को अपनी ओर आकृष्ट करके संगठित कर लेना चाहते हैं। इसीलिए हमारे समाज में, हमारे घर में और हमारे व्यक्तिगत जीवन में गठन की निविड़ता देखी जाती है। आत्मा का काम है—सृजन करना। मन का काम आहरण करना है।

योग की सारी बातों को मैं नहीं जानता। परन्तु सुनता हूँ कि योगी लोग अपने आत्मबल से सृष्टि रच सकते हैं। प्रतिभा की रचना भी इस तरह की है। कवि लोग अपनी कुदरती शक्ति से मन को रोक कर अर्द्ध-अचेतन हालत में आत्मा के किसी खिंचाव से-'भाव, रस, वर्ण, दृश्य, ध्वनि' आदि कविता की सामग्रियों को इकट्ठा कर लेते हैं और उन्हें को सृष्टि रचने में लगाते हैं।

महान लोग महान काम करते हैं—यह भी इसी प्रतिभा के फलस्वरूप। किसी ईश्वरीय शक्ति के खिंचाव से सभी चीज़ें अपने-अपने स्थान पर सम्बद्ध हो जाती हैं। ज़रा-सा भी अन्तर नहीं रहता। और इसका फल सम्पूर्ण काम के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति के मन नामक सबसे नटखट लड़के को मारकर एकदम निकाल बाहर नहीं कर दिया जाता, बल्कि वह भी रहता है। लेकिन अपनी अपेक्षा अति प्रतिभा के अमोघ माया मंत्र से मोहित होकर वह काम किये जाता है। प्रतीत होता है कि सभी चमत्कार से होता है। गेरी बाल्डी ने भी इसी तरह नष्ट-भ्रष्ट इटली को नये ढंग से संगठित किया था। वाशिंगटन भी इसी तरह बयाबान अमेरिका को अपनाकर—एकत्रकर साम्राज्य की शकल दे गये थे। इन कामों में प्रत्येक एक—एक योगसाधन है।

कवि जैसे कविता रचता है, अद्वितीय तानसेन जैसे तान, सुर, गान की रचना करता, स्त्री वैसे ही अपने जीवन की रचना करती है। ठीक उसी तरह अचेतन दशा में, ठीक उसी तरह माया-मात्र के प्रभाव से पिता-पुत्र, भाई-बहन और अतिथि को वह सुन्दर बाँध में बाँधकर उसे अपने चारों तरफ संगठित एवं सजा डालती है। अजीब उपकरण अपने निपुण हाथों से घर बनाती है—घर ही नहीं बनाती, बल्कि जहाँ जाती है, वहीं से अपने चारों तरफ की चीज़ों को सुन्दरता के नियम से बाँध लाती है। अपनी बातचीत, चाल-चलन और रहन-सहन को एक अजीबोगरीब साँचे में ढाल देती है। इसी को श्री कहते हैं। यह काम बुद्धि के बूते का नहीं; यह काम तो प्रतिभा का है। मन के बल से नहीं, बल्कि आत्मा की गूढ़ शक्ति से हो जाता है। गवैया का सुर, कवि का शब्द और कर्मी का काम—सब अपने निर्दिष्ट स्थान और यथासमय सुन्दर ढंग से होते हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि गूढ़ शक्ति जिसे आप प्रतिभा कह सकते हैं, छुपे तौर से इनके अन्दर काम कर रही है। यह प्रतिभा पहाड़ी झरने की तरह, निखिल विश्वभूमि के केन्द्र से अपने आप निकलती है। उसके केन्द्र को अचेतन न कहकर अतिचेतन कहना ठीक होगा। प्रकृति, जिसे सुन्दरता कहते हैं, वही गुणियों में प्रतिभा कहलाती है। नारी की वही श्री—सतीत्व है। पात्र-भेद के कारण उस एक ही शक्ति का अलग-अलग रूप से विकास होता है।

इसके बाद गगन पवन की ओर देखकर बोले—इसके बाद? तुम अपने लेख को सुना दो।

पवनदेव ने कहा—अब कोई आवश्यकता नहीं। मैंने जो शुरू किया था, तुमने एक तरह से उसको खतम कर दिया।

पृथ्वीराज ने कहा—कविराज महाशय ने सेवा आरंभ की और

डॉक्टर महाशय अन्त कर गये। अब हम राम-राम जपते विदा होवें। मन व बुद्धि क्या है और प्रतिभा तथा सौन्दर्य ही क्या है—आजतक यह मेरी समझ में आया ही नहीं। उम्मेद थी कि कभी-न-कभी इसका भेद समझ सकूँगा; परन्तु आज उस उम्मेद से भी निराश होना पड़ा।

उलझे हुए डोरे को सुलझाने के लिए जैसे बड़ी होशियारी से उसे खोलना पड़ता है, निर्झरिणी भी वैसे ही मौन धारण किए हुए अन्दर-ही-अन्दर बात को सुलझा रही थी, समझने की कोशिश कर रही थी।

प्रकाशवती भी मौनधारण कर बैठी थी। पवनदेव ने उससे पूछा—किस सोच में पड़ी हो?

इसपर प्रकाशवती ने कहा—हिन्दुस्तानी स्त्रियों के प्रतिभा-बल से हिदुस्तानी सन्तानों जैसी विचित्र सृष्टि क्योंकर हुई, इसी सोच-विचार में मैं डूबी हूँ। अच्छी मिट्टी से ही सब समय अच्छी शिव की मर्ति होती है, ऐसी बात नहीं।

गद्य और पद्य

मैंने कहा—कवियों के कथनानुसार वंशी की तान सुनकर और पूर्णिमा की छिटकी चाँदनी देखकर पुरानी याद ताजी हो जाती है। परन्तु किसकी याद—इसका कोई ठिकाना नहीं। संसार में बेशुमार नाम होते हुए भी मैं एक निराकार चीज़ को याद करने क्यों जाऊँ? क्यों न उसी को मैं विस्मृति कहूँ? लेकिन "विस्मृति जग उठती है"—ऐसा कहूँ तो वह बहुत असङ्गत मालूम होगा। किन्तु "विस्मृति जग उठती है"—यह वाक्य भी एकबारगी अर्थरहित नहीं है। बीते जीवन की हजारों यादें अपनी-अपनी आज़ादी, अपनी-अपनी खूबियों को छोड़ कर, एक-में-एक इस तरह पिरो गयी है कि उनको जुदा-जुदा करके पहचानना मुश्किल हो गया है। हमारे हृदय के चेतन रूपी महादेश को चारों तरफ से घेर कर इन विस्मृतियों का महा समुद्र भारीभरकम रूप धारण कर सोया पड़ा है। लेकिन कभी-कभी यह विस्मृति रूपी सागर चाँद और दखिनही हवा से चंचल एवं क्षुब्ध हो उठता है और चिन्ता की लहरें हिलोरें मारने लगती हैं। तब हमारा चेतन हृदय इन विस्मृतियों के चोट को अनुभव करता है। विस्मृतियों का राज़ से भरा अगाध अस्तित्व उपलब्ध हो जाता है। और इस लम्बे-चौड़े विपुल की एक चीख़ सुन पड़ती है।

प्रकाशवती—मेरे इस उद्‌गार को सुनकर खिलखिलाती हुई बोली—भैया, क्या उधम मचा रहे हो? समय रहते चुप हो जाओ। कविता सुनने में अच्छी लगती है, वह भी सब समय नहीं; किन्तु सरल गद्य में अगर तुम पाँचों जने मिलकर कविता मिलाते जावो तो गद्य हर रोज़ के व्यवहार के

योग्य न रह जायगा। दूध में पानी मिलाने से काम चल सकता है, लेकिन पानी के साथ अगर दूध मिलाया जाय तो उससे नहाने-पीने का काम नहीं चल सकता। कविता के भीतर थोड़ी मात्रा में गद्य के मिला देने से मेरे सरीखे गद्यजीवी लोगों के लिए पचाना, समझना आसान हो जाता है। किन्तु गद्य के साथ पद्य मिलाया कि हमारी बुद्धि हवा खाने चली गयी।

बस, मन की बात छोड़िये! शरत-प्रभा के नये भाव रूपी अङ्कुर को मेरे प्यारे साथी पृथ्वीराज ने अपनी पैनी खुरपी से जड़ से खोदकर बाहर निकाला है। किसी दलील का विरोध करते देखकर आदमी उतना असहाय नहीं हो जाता जितना भाव में बाधा पड़ने पर वह कमज़ोर हो जाता है। क्यों कि भाव की बात में सुनने वालों की सहानुभूति का ही एक मात्र सहारा रहता है। सुनने वाला अगर बोल उठे, क्यों पागलपन कर रहे हो, भावुक निरुत्तर हो जायगा और उसकी दलील भी बगलें बजाने लगेगी।

यही कारण है कि पुराने ज़माने में भावुक लोग भाव-विषयक कोई बात छेड़ते समय पहले सुनने वालों के हाथ-पैर पकड़ कर तब अपना-अपना वक्तव्य शुरू करते थे। उनका कहना था—"सुलझे दिमाग़ वाले हँसों की तरह पानी को छोड़ कर दूध ग्रहण करते हैं।" अपनी योग्यता को स्वीकार कर सभापतियों की गुण-ग्राहिकता पर अपनी सभी उम्मीद एवं भरोसा छोड़ देते थे। कभी भवभूति की तरह अत्यन्त घमंड के साथ शुरू से ही सभी लोगों पर अपनी योग्यता का धाक जमा लेने की चेष्टा करते थे। यह सब कुछकरके भी अन्त में अपना वक्तव्य समाप्त करते समय अपने आपको धिक्कारते हुए कहते थे कि जिस देश में शीशा और मुक्ता एक ही भाव बिकता है, उस देश का राम ही भला करें।

ऐसे देश से कुछ आशा नहीं की जा सकती। भगवान् से प्रार्थना करते– "हे भगवान! पाप का फल चाहे जो भी दो, सहने को तैयार हूँ, किन्तु अरसिक के सामने रस की कथा कहना मेरी तकदीर में कदापि न लिखना।" सचमुच ऐसा दण्ड कोई दूसरा नही है। इस धरती पर अरसिक ही न रहने पावें, इतनी बड़ी प्रार्थना भगवान से नहीं की जा सकती है, क्योंकि ऐसा होने से धरती की आबादी बहुत घट जायगी। अरसिक ही संसार के ज्यादा-से ज्यादा काम करते हैं। ऐसे लोग जन-समाज के लिए बहुत जरूरी हैं। उनके बिना जलसे बन्द हो जायँगे, कमेटियाँ कमज़ोर पड़ जायँगी और अखबारों को चुप्पी साध लेनी पड़ेगी, समालोचकों की रोटी मारी जायगी। इसीलिए उनके लिए हमारा खासकर सम्मान है, लेकिन कोल्हू में सरसों डालने से तेल निकलता है। इसलिए अगर कोई उसमें फूल डालकर उससे शहद निकाल लें तो यह कभी मुमकिन नहीं। इसलिये हे भगवान्! कोल्हू को सदा सही-सलामत रखो, पर उसमें कभी फूल मत डालना और न गुणियों का हृदय रूपी पिंड उसमें छोड़ देना।

श्रीमती निर्झरिणी में एक विशेष खूबी यह है कि वे सदा निर्बलों का समर्थन करती हैं। उन्होंने मेरी इस कु-दशा पर विचलित होकर कहा— क्यों? क्या गद्य और पद्य का अलगाव सचमुच इतना बड़ा है?

मैंने कहा—गद्य और पद्य, इन दोनो का स्थान अलग-अलग है। गद्य अन्तःकरण है और पद्य बाहर का बैठका है। अबला बाहर निकलकर घूमने-फिरने से विपत्ति में ही जा पड़ेगी, ऐसी कोई बात नहीं। लेकिन कोई पत्थर सरीखे हृदय वाला आदमी अगर उसे कोई कड़ी बात कहे और निरादर करे तो वह विवशतावश रोने लगेगी। इसलिए अन्तःपुर ही स्त्री के लिए सुरक्षित गढ़ है। पद्य, कविता वही अन्तःपुर है। छन्द

पीरू फशीह (चहारदीवार) में सहसा उस पर कोई हमला नहीं कर सकता। व्यक्तिगत भाषा से स्वतंत्र उसने अपने लिए एक मुश्किल साथ-ही-साथ सुन्दर हद बनाया है। अपने मन के भाव अगर उसी हद के भीतर रख पाता तो पृथ्वीराज क्या, किसी की भी ताकत न थी कि एकाएक सामने आकर उसका मजाक उड़ा जाता।

गगन देव गड़गड़े पी रहे थे। यह सुनकर नरचा मुँह से बाहर निकालकर बोले—मैं एकेश्वरवादी हूँ। सिर्फ गद्य के जरिए ही हमारी सभी जरूरतें पूरी हो जा सकती थीं। बीच में पद्य आकर आदमी के मनोराज्य में एक अनावश्यक अलगाव पैदा कर देता है। उसने कवि नाम से एक स्वतंत्र जाति की ही रचना की है। जब किसी खास सम्प्रदाय के हाथ में आमलोगों की सम्पत्ति चली जाती है तब वह सम्प्रदाय हमेशा यही चेष्टा करता है कि वह सम्पत्ति किसी दूसरे के कब्जे में न चली जाये, नहीं तो उसके स्वार्थ को धक्का लगेगा। कविगण भी भाव के चारों तरफ अड़चन खड़ा करके कवित्व नामक एक नये पदार्थ की उत्पत्ति कर डालते हैं। और यह देखकर आमलोगों को बड़ा अचरज होता है। उनकी आदत इतनी विकृत हो जाती है कि जब तक छन्द व तुकों के द्वारा धन की मार नहीं पड़ती तब तक उनका होश ही नहीं ठिकाने आता। स्वाभाविक आसान भाषा को छोड़कर भाव को पंचरंग रूप बनाना पड़ता है। भाव के लिये इससे लाज की बात कोई दूसरी नहीं हो सकती। सुनते हैं कि पद्य का इज़ाद मौजूदा ज़माना में हुआ है, इसीलिए तो वह हमेशा मोर की तरह पंख फैला-फैलाकर नाचा करता है। मैं उसे देखना भी नहीं चाहता। इतना कहकर गगन फिर तम्बाकू पीने लगे।

श्रीमती प्रकाशवती ने गगन की ओर तिरस्कार पूर्वक देखते हुए कहा—साइंस में प्राकृतिक निर्वाचन नामक एक तत्व का इज़ाद हुआ

है। यह प्राकृतिक निर्वाचन का नियम केवल जन्तुओं में ही नहीं पाया जाता, अपितु मानव-प्रकृति में भी पाया जाता है। यह प्राकृतिक निर्वाचन का ही असर है कि मोरनी को कलाप की जरूरत नहीं पड़ी और मोर पुच्छों से बिल्कुल ढँग गया। कविता का डैना भी उसी प्राकृतिक निर्वाचन का फल है। यह कवियों की जालसाज़ी नहीं है। क्या सभ्य देशों से लेकर असभ्य देशों तक ऐसी कोई जगह है, जहाँ कविता स्वाभाविक रूप से छन्दों के भीतर विकसित नहीं हो पायी है?

श्री पवनदेव इतनी देर तक मौन बैठे हुये मुस्करा रहे थे और ध्यानपूर्वक इस दलील को सुन रहे थे। प्रकाशवती ने जब हमारे बहस-मुबाहिसा में साथ दिया तब उनके मन में एक विचार उठा। उन्होंने बात छेड़ दी। उन्होंने कहा—कृत्रिमता में ही मनुष्य की सबसे अधिक प्रशंसा है। आदमी को छोड़ किसी दूसरे में कृत्रिम होने की ताकत ही नहीं; ईश्वर ने किसी दूसरे को यह अधिकार ही नहीं दिया। पेड़ को अपने पल्लव बनाने नहीं पड़ते, आसमान को अपनी नालिमा गढ़नी नहीं पड़ती। मोर के पंख को कुदरत खुद गढ़ देती है। सिर्फ आदमी को ही ब्रह्मा ने अपने सृजन-कार्य का 'ऐप्रेंटिस' रख छोड़ा है। उसके ऊपर छोटी-मोटी सृष्टि का बोझ दिया है। इस काम में जो जितना ही निपुणता दिखाता है ,उतनी ही अधिक उसकी धाक जमती जाती है। पद्य, गद्य के बजाय ज्यादा कृत्रिम है सही, पर उसमें आदमी की कारसाजी ज्यादा है। उसीने उसमें ज्यादा रंग दिया है। उसी को ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। हमारे मन में वह विश्वकर्मा निवास करते हैं जो हमारे अन्तःकरण में बैठे-बैठे तरह-तरह की रचनायें, तरह-तरह के विन्यास, तरह-तरह के प्रयास और तरह-तरह की प्रकास-चेष्ठायें पैदा करते हैं। पद्य में उनके सिद्धहस्तों का ज़्यादा परिचय पाया जाता है, इसी में

वह सबसे ज्यादा गौरव महसूस करता है। जल कल्लोलों की भाषा अकृत्रिम है और पल्लव मर्मर की भाषा भी अकृत्रिम है, लेकिन जहाँ मन निवास करता है, वहाँ बहुत मेहनत से कृत्रिम भाषा चली गयी है।

निर्झरिणी शान्ति पूर्वक पवन की सारी बातें सुन गयीं और उनके खूबसूरत ललाट पर एक चमक झलक पड़ी। दूसरे दिन अपना स्वतंत्र विचार व्यक्त करते समय बिना हिचकिचाहट के कहने लगीं—पवन की बात सुनकर मेरे मन में एक विचार पैदा हुआ है। मैं नहीं कह सकती हूँ कि उसे प्रकट करने में मैं कहा तक कामयाब हूँगी। सृष्टि के अंश के साथ हमारे हृदय का संयोग है, उस अंश में न जाने कितनी दक्षता दिखलाना पड़ती है, कितना ही रंग ढालना पड़ता है और कितने ही धूमधाम की ज़रूरत पड़ती है। फूल की हरएक पंखड़ी को न जाने कितनी मेहनत से गोल और चिकना बनाना पड़ता है और पेड़ के ऊपर न जाने कितनी सुन्दर भाव-भंगी के साथ उसे खड़ा करना पड़ता है। पहाड़ के सिर पर बर्फ का मुकुट पहनाकर उसको नीले आसमान में कितने महत्व के साथ प्रतिष्ठित करना पड़ता है; पश्चिमी समुद्र के किनारे सूर्यास्त के पीत पट के ऊपर न जाने कितने रंग झलकाने पड़ते हैं, कितना कौशल दिखलाना पड़ता है। धरती से लेकर आसमान तक कितनी सज-धज, कितने रूप-रंग सुशोभित करने पड़ते हैं—इतना करने पर तब कहीं हमारे सरीखे क्षुद्र आदमी का मन भरता है। ईश्वर ने अपनी रचना में जहाँ प्रेम, सुन्दरता और महत्व प्रकट किया है, वहाँ उन्हें भी कारीगरी करनी पड़ी है। जंगल में जो फूल खिला है, उसे भी न जाने फूल की कितनी पंखड़ियों के अनुप्रास से अलंकृत करना पड़ता है और आसमान की नीली-चादर पर सिर्फ एक ही ज्योतिशिखा को प्रकट करने में उसे कितने सुसंयत छन्दों की रचना करनी पड़ती है। साइन्स जानने वाले आजतक इसको स्थिर ही

नहीं कर सके। भाव को प्रकट करते समय आदमियों को तरह-तरह के कौशलों का सहारा लेना पड़ता है—शब्द में संगीत की तान लानी पड़ती है। तभी मन की बात मन में जाकर जगह बना पाती है। इसे अगर कृत्रिमता कहते हैं, तो सारी दुनिया ही कृत्रिम है।

यह कहकर निर्झरिणी मेरी तरफ देखने लगीं मानों मुझसे मदद माँग रही थीं। उनकी आखों की चंचलता से यह ज़ाहिर होता मानो वह कह रही हैं—इतनी देर तक न जाने मैं क्या अनाप-शनाप बक गयी। इसको ज़रा तुम खोलकर समझा देते तो अच्छा होता। इतने में गगन सहसा बोल उठे—बहुतों की ऐसी भी राय है कि सारी दुनिया ही कृत्रिम है। निर्झरिणी का अभिव्यक्त भाव तो मायामात्र है अर्थात् हमारे मन की रचना कृत्रिम है। इस बात को मंजूर करना और झूठ साबित करने की चेष्टा करना बड़ा मुश्किल है।

पृथ्वीराज लाल-पीला होकर बोले—तुम लोग विषय को छोड़कर आगे बढ़ते जाते हो। सवाल यह पेश था कि भावप्रकाश के लिए पद्य की कोई ज़रूरत है या नहीं। तुम लोग इस विषय को छोड़कर समुद्र के उस पार के मायावाद में फँसते जा रहे हो। मेरा अटूट विश्वास है कि भाव प्रकाश के लिये छन्दों की रचना नहीं हुई। छोटे-छोटे बालक लाचारी बहुत पसद करते हैं; उसके भावमाधुर्य के कारण नहीं, अपितु उसके छन्दक तुकबन्दी के कारण। इसी तरह जब तक हम असभ्य हालत में थे, तब तक निरर्थक वाक्यों के झंकारमात्र से ही मोहित हो जाया करते थे। इसीलिये लोगों ने सबसे पहले निरर्थक लाचारियों को बनाया। यही उसकी सबसे पहली कविता हुई। मनुष्य जाति क्रमशः ज्यों-ज्यों तरक्की करती जाती है, त्यों-त्यों वह छन्द के साथ अर्थ का संयोग करती जाती है। उसकी रुचि बदली होने के कारण मजबूरी उसे ज्यादा

दिन तक तुष्ट नहीं कर सकती। लेकिन बुजुर्गी के होते हुए भी कभी-कभी मनुष्य के अन्दर किसी गुप्त छायादार जगह में बालक अंश बचा रह जाता है। छन्द प्रियता, ध्वनि प्रियता वही गुप्त जगह है। हम लोगों की बुजुर्गी का अंश अर्थ और भाव चाहता है। हम लोगों का यह अंश ध्वनि और छन्द पसन्द करता है।

प्रकाशवती ने गर्दन झुकाकर कहा—खुशकिस्मती है कि हमारे सभी अंश बुजुर्ग नहीं हो पाये। मनुष्य के नाबालिग अंश को मैं दिल से धन्यवाद देती हूं। उसी के कारण दुनिया में थोड़ी बहुत मधुरता है।

पवन ने कहा—जो मनुष्य एकदम पका आम होगा है, वह दुनिया का बड़ा लड़का है। किसी तरह को खेल-कूद और लड़कपन उसे अच्छा नहीं लगता। हमारी आधुनिक हिन्दू जाति सबसे बड़ा और सबसे पुरानी जाति है। वह निपुणता की डींग मारती है, पर दरअसल में अनेक विषयों में अब भी वह कच्ची है। बड़े लड़के और बूढ़ी जाति की तरक्की होनी मुश्किल है; क्यों की उसमें ज़रा-सी भी नम्रता नहीं है। यह गुप्त बात है, कहीं उसे ज़ाहिर न करियेगा। आजकल लोगों की प्रकृति में तबदीली हो गयी है।

मैंने कहा—जब शहरों के रास्ते कल की चक्की से मरम्मत किए जाते हैं, तब लालबत्ती जलती है और खबरदार का बार्ड लटका दिया जाता है। गाड़ी चलती है! मैं प्रकाशवती को पहले ही से खबरदार कर देता हूँ। भाप से चलने वाले कल को वह सबसे अधिक भय की दृष्टि से देखती हैं। पर उस कल्पना के भाप-यंत्र का मैं अधिक आसान समझता हूँ। गद्य और पद्य के प्रसंग में एक और मनचली रागिनी छेड़ूँगा—इच्छा हो तो सुनो।

चाल (गति) के भीतर एक बहुत ही पारिमाणिक नियम है। चलते समय मनुष्य के पैर समान भाव से पड़ते हैं और उन्हीं के साथ

मनुष्य के अंग के तमाम हिस्से समान भाव से हिलते हुए गति की सामंजस्य-रक्षा करता है। समुद्र की लहर में भी एक बड़ा भारी लय-ताल है। यह धरती एक महाछन्द के अनुसार सूरज के चारों ओर घूमती है।

गगन मेरी बात काटकर बोल उठे—हालत ही वास्तव में आज़ाद है, वह आजादी में मस्त रहती है, लेकिन गति को पद-पद पर एक नियम के अधीन होकर चलना पड़ता है—वह नियम के घेरे में है। तौभी आम लोगों में एक गुमराह करने वाली धारणा पैदा हो गयी है कि चाल (गति) ही आजादी का असली रूप है और हालत एक खास बन्धन है। इसका सबब यह है कि इच्छा मन की एकमात्र चाल (गति) है और उसी के अनुसार चलने को ही मूर्ख लोग आज़ादी कहते हैं। किन्तु हमारे देश के विद्वान् लोग समझते है कि इच्छा ही हमारे सभी कामों और गति-विधि का एक नामकरण है, वही सारे बन्धनों की जड़ है। इसीलिए मुक्ति पाने के लिए वह लोग सलाह देते हैं कि इच्छा को जड़ से काट दो। उनका कहना है कि देह और मन की सब तरह की गतियों का निरोध ही योग-साधन है।

पवनदेव गगन की पीठ थपथपाते हुए बोले—किसी आदमी ने कोई प्रसंग उठाया है, ऐसे समय अगर बीच ही में बोल उठो तो उसे झगड़ा मोल-लेना कहेंगे।

मैंने कहा—वैज्ञानिक पृथ्वीराज से यह बात छिपी नहीं है कि गति के साथ गति और कम्पन के साथ कम्पन का गहरा सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ 'सा' सुर के बजतेही 'म' सुर का तार काँप उठता है। हमारे मन की चेतना भी कम्पित अवस्था है, इसीलिये दुनिया के अजीबोगरीब कम्पन के साथ उसका संयोग है। ध्वनि आकर स्नायु कम्पन को मदद कर जाती है। उसके चिरकंपित स्नायुजाल ने उसको दुनिया के तमाम स्पन्दन छन्दो

में नाना प्रकार के सूत्रों द्वारा बाँधकर जाग्रत कर रखा है।

'इमोशन' (हृदय-वृत्ति) हमारे हृदय की गति हैं। उसके साथ भी दूसरे-दूसरे विश्व-कम्पनों की एक बड़ी एकता है। आलोक के साथ वर्ण और ध्वनि के साथ उसका एक स्पन्दन सम्बन्धी संयोग है। इसलिये संगीत इतनी सरलता से हमारे हृदय को छू सकता है और दोनों के संयोग होने में देर नहीं लगती। तूफ़ान और समुद्र में जैसा भयङ्कर सम्मिलन होता है, वैसा ही निविड़ संघर्ष, गान और प्राण में भी हुआ करता है।

इसका एकमात्र कारण यह है कि संगीत अपने कंपन का संचार करके हमारे तमाम भीतर प्रदेश को चंचल कर देता है। मन में उदासी छा जाती है। अनेकों कवि इस भाव को अनन्त की आकांक्षा के नाम से सम्बोधित करते हैं। मैंने भी कभी-कभी ऐसे भाव को महसूस किया है और इस तरह की भाषा का प्रयोग किया है। सिर्फ संगीत ही क्यों, सूरज डूबने के बाद वाली आकाश की छटा ने भी कितनी ही बार मेरे भीतरी प्रदेश मे अनन्त विश्व का स्पंदन संचारित किया है। सिर्फ संगीत और सूरज का डूबना ही क्यों ? जब कोई प्रेम हमें एकदम विचलित कर देता है, तब वह भी हम लोगों को संसार के क्षुद्र बन्धन छुड़ाकर अनन्त के साथ मिला देता है। वह एक महान तपस्या का रूप बना लेता है। और देश काल के शिलामुख को चीर करके झरने की तरह अनन्त की ओर बह जाता है। इसी प्रकार प्रबल स्पन्दन हमें विश्व स्पन्दन से मिला देता है।

एक बड़ी फौज जैसे एक दूसरे की उत्तेजना से आकृष्ट होकर एक प्राण हो जाती है, वैसे ही जब विश्व का कंपन सुन्दरता के संयोग से हमारे हृदय में संचरित हो जाता है, तब हम लोग सम्पूर्ण संसार के साथ समान भाव से कदम बढ़ाते चले जाते हैं।

इसी भाव को कवियों ने भिन्न-भिन्न शब्दों में प्रकट करने की चेष्टा की है और आज भी कितने ही लोग इसे समझ नहीं सके। बहुतेरे इसे कवियों का प्रलाप समझते हैं।

इसका कारण यह है कि भाषा का तो हृदय के साथ कोई खास सम्बन्ध नहीं है। उसे मस्तिष्क का भेदन कर अन्तर प्रदेश में घुसना पड़ता है। वह तो एक दूत के सिवा और कुछ नहीं। हृदय के भीतर घुसने का उसे अधिकार नहीं है। खुले दरबार में वह निवेदन कर जाता है। इसके सिवा उसे कोई चारा नहीं। समझने में उसे देर लगती है; परन्तु संगीत एकदम पहले ही इशारे पर हृदय को आलिंगन कर पकड़ रखता है।

यही कारण है कि कवि लोग भाषा के साथ-साथ एक संगीत की नियुक्ति कर देते हैं। वह अपने माया से हृदय का दरवाज़ा खोल देता है। छन्द और ध्वनि से जब हृदय अपने-आप विचलित हो उठता है, तब भाषा का काम बहुत कुछ सरल हो जाता है। दूर पर जब वंशी बजती रहती है, फूल जब आँखों के सामने खिले रहते हैं, उस समय प्रेम का अर्थ समझना आसान होता है।

संगीत के दो अंश हैं—सुर और ताल, छन्द और ध्वनि। यूनानियों ने "ज्योतिष्क मंडली का संगीत" नामक विषय का वर्णन किया है। शेक्सपीयर के ग्रन्थों में उसका कारण पहले ही वर्णित है। एक गति के साथ दूसरी गति का बहुत निकट सम्बन्ध होता है। समस्त आकाश में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, उपग्रह ताल पर नाचते हुए जा रहे हैं। उनका विश्व व्यापी महासंगीत मानों न आँख से दीख पड़ता है और न कान से सुना जाता है। छन्द संगीत का एक रूप है। कविता में छन्द की ध्वनि मिलकर भाव को जीवित बना देते हैं। कृत्रिम अगर

कोई चीज़ हो तो भाषा ही कृत्रिम हो सकती है—सौन्दर्य कृत्रिम नहीं हो सकता। भाषा मनुष्य की सृष्टि है, परन्तु सौन्दर्य को पैदा करनेवाला सम्पूर्ण संसार का सृष्टिकर्ता है।

मेरी यह बात सुनकर निर्झरिणी गद्‌गद हो उठी। वह मुस्कराती हुई बोली—ड्रामा के अभिनय में हमारे हृदय में उथल-पुथल मचा देनेवाले कितनी ही बातें एक साथ मौजूद रहती हैं। संगीत, रंगबिरंगे पर्दे आदि सभी चीजें हमारे चित्त को चंचल कर देती हैं। तौभी एक अविश्राम भावस्रोत तरह-तरह का रूप धारण कर विविध कामों में प्रवाहित होता है। हम लोगों का मन नाटक के प्रवाह के भीतर कोई दूसका उपाय न देखकर तेजी के साथ बह चलता है। अभिनय होने वाले स्थलों में देखा जाता है कि भिन्न-भिन्न कलाओं के बीच एक सहयोगिता है। वहाँ साहित्य, चित्र, संगीत और नाट्यकला एक उद्देश्य सिद्धि के लिए शामिल होती है। मेरी समझ में ऐसा मिशाल कोई दूसरा नहीं मिल सकता।

काव्य का तात्पर्य

निर्झरिणी ने मुझसे कहा—देवयानी और कच की कथा के बारे में तुमने जो कविता लिखी है, उसे तुम अपनी ज़बान से सुनाओ।

यह कथा सुनकर मैं फूले नहीं समाया; परन्तु दर्पहारी मधुसूदन

उस समय जग रहे थे, इसलिये शीघ्र प्रकाशवती अधीर होकर कहने लगीं—तुम बुरा न मानना, इस क्षण तक उस कविता का तात्पर्य मैं कुछ भी न समझ सकी। यह लेख तो अच्छा न हुआ।

मैं मौन हो गया। और मन में कहा—कुछ नम्रभाव से यह प्रकट करने से दुनिया का खास कोई नुकसान न होता, क्योंकि लेख में ख़ामी का रहना जिस तरह अचरज की बात नहीं, उसी तरह कोई ज़ोर देकर यह नहीं कह सकता कि पढ़ने वाले के भीतर कविता को समझने की पूरी-पूरी शक्ति है, उसमें कोई त्रुटि ही नहीं। अगचें अपनी रचना के बारे में लेखक को बहुधा आशा और भरोसा रहता है, तौभी इतिहास से यह साबित है कि लेख में भी त्रुटि का होना बिल्कुल ग़ैरमुमकिन नहीं। और दूसरी ओर समालोचकों का एक दम अभ्रान्त निर्दोष होना मुमकिन है, इसका भी कोई सबूत इतिहास में नहीं मिलता। इसीलिए ऐसी हालत में सिर्फ इतना ही ज़ोर देकर कहा जा सकता है, कि यह कविता तुम्हें पसन्द नहीं आयी। यह मेरी बदकिस्मती है। हो सकता है कि यह तुम्हारी ही बदकिस्मती हो।

प्रकाशवती ने गंभीरतापूर्वक कहा—"हो सकता है।" इतना कहकर एक किताब उठाकर पढ़ने लगीं।

गगन बाहर दृष्टि फेरकर बोले—अगर तात्पर्य की बात कहो तो मैं कहूँगा कि मैंने इस लेख का एक तात्पर्य पाया है।

पृथ्वीराज ने कहा—पहले यह बताने की तकलीफ करो कि उसका विषय क्या है? कविता तो अभी पढ़ी ही नहीं गयी। कवि के भय से मुझे चुप रहना पड़ा था; पर अब मैं स्पष्टरूप से कहना चाहता हूँ।

गगन ने कहा—शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या सीखने के लिये कच (बृहस्पति के पुत्र) को देवताओं ने दैत्य-गुरु के आश्रम पर भेजा।

वहाँ कच ने हजारों साल नाच-गान-वाद्य से शुक्र की लड़की देवयानी का मन बहलाते हुए संजीवनी विद्या सीखी। आखिर में जब बिदा होने का समय आया तब देवयानी ने उन पर अपना प्रेम जता करके उन्हें जाने से रोका। देवयानी के प्रति भीतरी खिंचाव होते हुए भी कच उसके आग्रह को न मानकर अपने घर चले गये। कथा तो यही है, पर महाभारत के साथ थोड़ा-सा मतान्तर है। इसकी गिनती नहीं करनी चाहिये।

प्रकाशवती ने आर्द्र-स्वर से कहा—कहानी तो देखने में छोटी ही है; पर सन्देह है कि इसका मतलब कहीं इससे भी बड़ा न हो।

गगन ने प्रकाशवती की बात सुनी-अनसुनी कर कहा—यह कथा देह और आत्मा के बारे में है।

यह सुनकर सभी भयभीत हो गये।

प्रकाशवती ने कहा—मैं इस वक्त अपनी देह और आत्मा को लेकर प्रतिष्ठा के साथ विदा होता हूँ।

पवनदेव ने अपने हाथों से उनका वस्त्र पकड़कर बैठाया और कहा—परेशानी में हम लोगों को छोड़कर कहाँ जाते हैं?

गगन ने कहा—जीव स्वर्ग से इस संसार में आया है। वह यहाँ सुख-दुःख से सबक सीखता है। जब तक वह विद्यार्थी रहता है, तब तक उसे आश्रम-कन्या देह को तुष्ट रखना पड़ता है। मन भुलाने की अपूर्व विद्या उसे मालूम है। वह देह की इन्द्रिय रूपी वीणा से ऐसा मधुर संगीत अलापता है कि धरती पर सौन्दर्य की नन्दन मरीचिका उतर आती है और शब्द, गन्ध और स्पर्श, सभी जड़ शक्तियाँ बाद्य नियम को छोड़ करएक अपूर्व स्वर्गीय नृत्य के आवेश में हिलने लगती है।

बोलते-बोलते शून्यदृष्टि गगन प्रफुल्लित हो उठे। चौकी पर सम्हल कर बैठते हुये बोले—"अगर इस दृष्टि से देखो तो हरेक आदमी के

भीतर एक अनन्तरकालीन प्रेम का अभिनय देख पाओगे। जीव अपनी मूढ़ संगिनी को किस तरह पागल बना रहा है। देह के हरेक परमाणु, भीतर एक ऐसी आकांक्षा पैदा कर देता है कि देह-धर्म के द्वारा उस आकांक्षा की तुष्टि नहीं होती। उसकी आँखों में सुन्दरता का एक हाथ ऐसा फेर देता है कि उसकी आँखों में चकाचौंध पैदा हो जाती है और वह कुछ देख ही नहीं पाती। उसके कान में जो संगीत बजा जाता है, उसकी सीमा नहीं। वह व्याकुल हो उठती है। अनवरत परिश्रम से छाया की भाँति साथ रहकर नानाप्रकार के उपचारों से उसकी सेवा करती है। प्रवास की ज़िन्दगी उसे न अखरे, सेवा-सत्कार में किसी प्रकार की कमी न होने पाये—इन बातों के लिये हमेशा तत्पर रहती है। इतना तत्पर रहने पर भी एक दिन जीव अपनी चिरसंगिनी देह-लता को धूलिशायिनी करके चला ही जाता है। कहना जारी रखता है कि प्रिये, अगर्चे मैं दिल से प्यार करता हूँ, तौभी तुम्हारे लिये सिर्फ़ एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर ही मुझे जाना पड़ेगा। देह उसका पाँव पकड़कर कहती है—प्रीतम, आखिर में अगर मुझे तृणवत् छोड़कर जाना ही था, तो अपने प्रेम के गौरव से आपने मुझे महिमामय क्यों बनाया? मुझे क्यों अपनाया? मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ! परन्तु तुम क्यों मेरे इस प्राणरूपी मन्दिर में एक दिन घुप अँधेरी रात में विशाल समुद्र पारकर लुक-छिपकर प्यार करने आये थे? इस करुण प्रश्न का कोई जवाब न देकर बिदेशी कहाँ चला जाता है—यह कोई नहीं जान पाता। यही चिर मिलन के बन्धन का अवसान है। उसके समान दयनीय विरह-दृश्य किसी अन्य प्रेम-काव्य में नहीं मिलेगा।

पृथ्वीराज के चेहरे से एक परिहास का आभास टपक रहा था। यह देखकर गगन ने कहा—तुम लोग इसे प्रेम नहीं समझते हो। क्या

तुम लोग यह समझते हो कि मैं रूपक के आधार पर ये बातें कह रहा हूँ ? ऐसी बात नहीं। इस दुनिया में यही सर्वप्रधान प्रेम है। ज़िन्दगी का सर्वप्रधान प्रेम जैसे सबकी अपेक्षा प्रबल हुआ करता है वैसे ही दुनिया का सर्वप्रधान प्रेम भी सरल और मुश्किल होता है। यह देह का प्यार दुनिया में सबसे पहले प्रकट हुआ था। उस वक्त धरती में जल और थल का विभाजन नहीं हुआ था। उस समय कोई कवि मौजूद न था। किसी इतिहासवेत्ता ने जन्म ग्रहण न किया था। लेकिन उस दिन जल से सराबोर, कीचड़-युक्त अपरणित धरातल के ऊपर इसकी विजय पताका सबसे पहले फहरा उठी थी। यह साबित हुआ था कि यह दुनिया अस्त्र-शस्त्र आदि यंत्रों की ही दुनिया नहीं है। प्रेम नामक एक अपूर्व वेदना-पूर्ण इच्छाशक्ति कीचड़ के भीतर से कमलवन पैदा करती है और इस वन के ऊपर भक्तों की नज़र में सौन्दर्य रूपिणी लक्ष्मी और भाव रूपिणी सरस्वती वास करती है।

पृथ्वीराज ने कहा—यह सुनकर मुझे अपार हर्ष हुआ कि हम लोगों में हरेक के भीतर एक इतना बड़ा काव्य-युद्ध छिड़ा हुआ है। लेकिन यह मंजूर करना ही पड़ेगा कि सरल प्रकृति काया के प्रति चंचल जीव का आचरण संन्तोषप्रद नहीं है। मेरी उत्कट इच्छा है कि मेरी आत्मा और जीवात्मा इस तरह चंचलता न प्रकट करके कम-से-कम थोड़े दिन और देह-देवयानी के आश्रम में स्थिर होकर रहे। तुम लोग भी यही दुआ करो।

पवन ने कहा—भाई गगन, तुम्हें क्या हो गया है ! तुम्हारे मुख से तो कभी शास्त्रों के विरुद्ध आलोचना नहीं सुनी जाती। तुमने आज क्यों ईसाइयों जैसी बातें कही हैं ? जीव स्वर्ग से इस दुनिया में भेजा जाकर देह के साथ निवास करता है और सुख-दुख में रहने से उसका पूरा-पूरा

विकास होता है। इन विचारों के साथ तो तुम्हारे पुराने विचारों का मेल नहीं खाता।

गगनने कहा—इन सब बातों में राय का मिलान करने की चेष्टा न करना। अपनी पुरानी राय के साथ मौजूदा राय का सामंजस्य रखने के बखेड़े में मैं नहीं पड़ता। ज़िन्दगी के सफर वाले व्यापार हरेक जाति ही अपने देश की चालू मुद्रा में मूलधन एकट्ठा करती है। देखने की बात यह है कि उसके जरिए व्यवहार चल सकता है या नहीं। जीव सुख-दुःख के भीतर से शिक्षा हासिल करने के लिये दुनिया में प्ररित हुआ है। इसी राय को असलीधन मान कर ज़िन्दगी का सफर अगर उचित रीति से चल सके, तब तो मैं समझता हूँ कि यह शिक्षा बनावटी है। फिर प्रसङ्ग क्रम से कोई अन्तर होगा तो मैं लोगों को समझा दूँगा कि जिस बैंक नोट को लेकर ज़िन्दगी का ब्यापार शुरू किया था, दुनिया की रचना वाले (विधाता) के बैंक में वह नोट भी चलता है।

पृथ्वीराज ने आर्द्र स्वर में कहा—दुहाई सरकार की! तुम्हारी प्यार की बातें ही कठिन प्रतीत होती हैं। फिर यदि तुम व्यापार की अवतारणा करो तो मुझे भी यहाँ से विदा होना पड़ेगा। यह मेरी समझ के परे है। अगर जान बक्शी जाय, तो मैं कविता का अभिप्राय ज़ाहिर करूँ।

गगनदेव ने चौकी के सहारे बैठ कर जंगले पर दोनों पॉव बढ़ा दिये।

पृथ्वीराज ने कहा—मैं देखता हूँ कि अभिव्यक्तिवाद (इवोल्युशन थ्येरी) की असली बात इस कविता में मौजूद है। संजीवनी विद्या का अर्थ है ज़िन्दा रहने की विद्या। दुनिया में यह साफ देखा जाता है कि हरेक आदमी उस विद्या को हासिल करने लिये लगातार अभ्यास

करता है। एक-दो साल नहीं, इस विद्या को सीखने लिये लाखों वर्ष तक तपस्या करनी पड़ती है। परन्तु जिसका सहारा लेकर वह इस विद्या का अभ्यास कर रहा है, उस प्राणी-वंश के प्रति उसका प्रेम क्षणस्थायी होता है। ज्योंही एक अध्याय समाप्त किया कि यह निष्ठुर प्रेमिक उसको रद्दी के टोकड़े में फेंकर चला जाता है। धरती का चप्पा-चप्पा इस निष्ठुर विदाई के विलाप-गान से गूँजित हो रहा।

पृथ्वीराज की बात की रफ्तार अभी जारी थी कि बीच ही में विरक्त होकर प्रकाशवती बोल उठीं—तुम लोग अगर इस तरह तात्पर्य बाहर करते जाओ तो तात्पर्यकी सीमा न रहेगी। लकड़ी को जला कर आग विदाई लेतीं है, रेशम के कोआ को फोड़कर रेशम का कीड़ा बाहर निकल जाता है, फूल को सुखाकर फल निकलता है, बीज को फोड़कर अङ्कुर निकलता है। ऐसे ही लाखों तात्पर्यों की ढेर लग सकती है।

गगन ने गंभीरतापूर्वक कहा—यह बात सोलहों आना ठीक है। ये तो तात्पर्य नहीं है, केवल उदाहरण है। उसके भीतर की असली बात यह है कि दुनिया में दोनों पैरों का इस्तेमाल किये बिना हमारा काम नहीं चल सकता। बायाँ पैर जब पीछे रुका रहता है, तब दाहिना पैर आगे रुक जाने पर बायाँ पैर अपना बन्धन छुड़ाकर आगे बढ़ता है। हम एक बार अपने आपको बँधवाते हैं, दूसरे ही पल बन्धन को खोल देते हैं। हमें प्रेम करना भी पड़ता है और प्रेम को तोड़ना भी पड़ता है। दुनिया का यही सबसे बड़ा विषादमय नियम है और इस नियम के अनुसार ही हमें चलना पड़ेगा। समाज के बारे में भी यही बात लागू है। नया नियम जब कालक्रम से पुरानी प्रथा के रूप में परिणत होकर हम लोगों को एक जगह पर रोक लेता है—बंधन में जकड़ देता है, तब समाज में एक बड़ा भारी विप्लव आता है, जिसके फलस्वरूप यह

बन्धन टूट जाता है। जिस पैर को हम टेकते हैं, शीघ्र उसे उठा भी लेना पड़ता है, नहीं तो चलना मुश्किल हो जाय। इसलिये देखा जाता है कि जहाँ उन्नति है, प्रगति है—वहाँ बिलगाव है। यही ईश्वरीय नियम है।

पवन ने कहा—कहानी के आखिर में जो एक शाप है, तुममें से किसी ने उसका ज़िक्र नहीं किया। कच जब विद्या हासिल कर और देवयानी का प्रेमरूपी बन्धन तोड़कर स्वर्ग को जाने लगे, तब देवयानी ने उन्हें शाप दिया कि तुमने जो विद्या सीखी है, वह विद्या तुम दूसरे को सिखा सकते हो, परन्तु खुद उसका व्यवहार नहीं कर सकते। मैंने उस अभिशाप के साथ-साथ एक दूसरा तात्पर्य निकाला है। अगर धीरज धरकर सुनना चाहो तो कहूँ।

पृथ्वीराज ने कहा—धैर्य रह सकेगा या नहीं, यह पहले से नहीं कह सकता हूँ, प्रतिज्ञा करके अगर प्रतिज्ञा का पालन न हो सका तो क्या होगा। तुम शुरू कर दो, फिर हालत अगर संगीन हो जाय तो मुझ पर दया करके रुक जाना।

पवन ने कहा—संजीवनी विद्या का अर्थ रखिये अच्छी तरह जीवन धारण करने की विद्या। कल्पना कीजिये कि कोई कवि उस विद्या को खुद सीखकर दूसरों को सिखाने के लिये इस दुनिया में पैदा हुआ है। उसने अपनी प्राकृतिक शक्ति के द्वारा दुनिया को मोहित करके उसके समीप से उस विद्या का उद्धार कर लिया। उसने दुनिया से प्रेम नहीं किया सो बात नहीं, परन्तु दरअसल बात यह है कि जब दुनिया ने उससे कहा कि मेरे बन्धन में आओ, मेरी रस्सी गले में डाल लो, तब कवि ने कहा—मैं आत्मसमर्पण कर दूँ तो जो संजीवनी विद्या मैंने सीखी है, वह दूसरों को नहीं सिखा सकूँगा। मैं चाहता हूँ कि "दुनिया

में सबके भीतर रहकर भी अपने को अनासक्त रखूँ" । तब दुनिया ने उसे शाप दिया—"तुमने जो विद्या मेरे यहाँ से सीखी है उस विद्या को तुम भले ही दूसरों को सिखा दो, पर तुम खुद उसका व्यवहार नहीं कर सकते।" दुनिया के इसी शाप के कारण अक्सर देखा जाता है कि गुरू की शिक्षा से विद्यार्थी लाभ उठाता है, लेकिन गुरू खुद उस संसार-ज्ञान से लाभ नहीं उठा सकते। इस काम में वह बालक से भी नादान है। इसका कारण यह है कि निर्लिप्तभाव से बाहर से विद्या सीखी जा सकती है, परन्तु जब तक हम उसमें लिप्त होकर व्यवहारिक शिक्षा ग्रहण नहीं करते, तब तक उसका प्रयोग नहीं कर सकते। इसीलिये पुराने ज़माने में ब्राह्मण मंत्री होते थे और क्षत्रिय राजा उससे मंत्रणा लेते थे। ब्राह्मण को अगर राजगद्दी पर बिठा दिया जाता तो ब्राह्मण कर्मसागर के अथाह जल में डूब जाते और राज्य को भी ले डूबते।

तुमने जो सब बातें छेड़ी थी, उनमें सभी बहुत साधारण हैं। मान लो कि हमारे कथनानुसार रामायण का तात्पर्य यह है कि राजा के घर में पैदा होकर भी अनेकों सुख-दुःख उठाने पड़ते हैं, शकुन्तला का तात्पर्य यह है कि उपयुक्त अवसर पर स्त्री-पुरुष के हृदय में परस्पर प्रेम का संचार होना कोई असंभव बात नहीं तो क्या तुम इसे कोई नयी शिक्षा कहोगे ?

निर्झरिणी ने हिचकिचाते हुये कहा—मेरी समझ के अनुसार वे साधारण बातें ही काव्य-कथा हैं। राजा के घर में जन्म लेकर भी सभी प्रकार के सुखों की सम्भावना रहते हुए भी आखिरी जीवन तक राम और सीता को एक आफ़त के बाद दूसरी आफ़त का सामना करना पड़ा है। इस मामूली, लेकिन संभवनीय बात को पढ़कर लोगों की आँखों में आँसू छलछला उठते हैं। लोग इस दुःख-भरी कहानी को बहुत पुरानी

जानते हुए भी इसे वेद-काव्य समझते हैं। शकुन्तला के प्रेम-दृश्य में असल में कोई विशेष बात नहीं है, सिर्फ एक बहुत ही पुरानी घटना का ज़िक्र है, जिसका तात्पर्य यह है कि प्रेम अचानक समय-असमय का खयाल किये बिना ही बड़ी तेजी से आक्रमण करता है और स्त्री-पुरुष के हृदय को एक दृढ़ बन्धन में बाँधकर एक कर देता है। इस बहुत ही सीधी-सादी बात के रहने से ही आम लोगों ने इसे इतने चाव से अपनाया है और आदर किया है। कोई-कोई यह बात कह सकते हैं कि द्रौपदी के चीर-हरण का खास अर्थ यह है कि मौत इस जीव-जन्तु, पेड़-पौदा, घास-फूस आदि से ढँकी हुई धरती का वस्त्र खींच रही है, लेकिन विधाता की दया से कभी उसके वस्त्रांचल का अन्त नहीं हो पाता। हमेशा वह नये-नये वस्त्रों से सुसज्जित होती रहती है।

सभापर्व में हमारे हृदय का खून खौल उठता था और एक भक्त स्त्री का संकट देखकर दुःख से हमारे आँखों से आँसू निकलने लगा था, इसका कारण वह नवीन और विशेष अर्थ नहीं है, बल्कि इसका कारण अत्याचार-पीड़ित रमणी की लाज और उसकी रक्षा नामक अत्यन्त पुरानी स्वाभाविक और मामूली तथ्य है। कच-देवयानी-संवाद में भी मनुष्य के हृदय की पुरानी और मामूली दुःख-गाथा का वर्णन किया गया है। उसे जो लोग तुच्छ समझते हैं और विशेष तथ्य को ही मुख्य समझते हैं, वे दरअसल में काव्य के समझनेवाले नहीं हैं।

पवन ने हँसकर कहा—श्रीमती निर्झरिणी ने हम लोगों को काव्य-रस के अधिकार की सीमा से एकदम निकाल दिया। इस समय देखा जाय, खुद कवि लोग क्या विचार करते हैं।

निर्झरिणी शरमिन्दा होकर बारंबार इसका खण्डन करने लगीं।

मैंने कहा—इस सम्बन्ध में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि जब मैं

कवित्व की रचना करने बैठा था, तब कोई अर्थ ही मेरे दिमाग में नहीं उठा था। तुम लोगों की दया से अब देखता हूँ कि मेरी लेखनी एकदम निरर्थक साबित नहीं हुई है। अर्थ-कोष में उसके लिये स्थान की कमी हुआ चाहती है। काव्य का एक गुण यह है कि कवि की रचना-शक्ति पाठकों की रचना-शक्ति को उद्विग्न कर देती है, तब अपनी प्रकृति के अनुसार कोई तो सुन्दरता, कोई नीति और कोई तत्व की सृष्टि करने लगता है। और ऐसा प्रतीत होता है मानों यह आतिशबाजी का तमाशा हो। काव्य वही आग की शिखा है। मनुष्य के मन में नानाप्रकार की आतिशबाजियाँ होती हैं। कोई आग लगाते ही हवाई जहाज की तरह आसमान में उड़ जाती है, कोई चरखी की तरह चारों तरफ घूमने लगती है और कोई बम की तरह धड़ाका करती है। इतने पर भी मैं कहूँगा कि निर्झरिणी के साथ मेरा मतान्तर नहीं है। बहुतेरों का कहना है कि गुठली ही फल का मुख्य अंश है और वैज्ञानिक युक्ति से इसे साबित भी किया जा सकता है। तौभी अधिकांश रसज्ञ फल का गुदा खाकर गुठली फेंक देते हैं। इसी तरह किसी काव्य में कोई विशेष शिक्षा हो भी सकती है, लेकिन काव्य-रसज्ञ उसके रसपूर्ण काव्य-अंश को ही अपनाते हैं। इससे उनके काव्य-विवेचन को दोष नहीं दिया जा सकता। लेकिन जो लोग अंशको ही अनुरोध से अपनाना चाहते हैं। उनका भी भला हो। उन पर भी दोषारोपण नहीं किया जा सकता। सरसों के फूल से कोई रङ्ग निकालता है, कोई तेल निकालता है, और कोई भौंचक होकर उसकी छटा देखता है। काव्य के भीतर से कोई इतिहास का तथ्य निकालता है, कोई दर्शन का तत्व निकालता है, कोई नीति-शिक्षा और कोई विषय-ज्ञान बाहर करता है। कोई-कोई तो काव्य के भीतर से काव्य के अलावा अन्य कोई

चीज़ ही नहीं निकाल सकते। जिनको जो मिल जाय, उसी को ग्रहणकर घर लौट जायँ। इसमें लड़ने-झगड़ने की कोई जरूरत नहीं। इससे कोई अर्थ नहीं निकलेगा।

प्रांजलभाषा

निर्झरिणी ने किसी मशहूर अङ्गरेज कवि का ज़िक्र करके कहा—न जाने क्यों उनकी कविताएँ मुझे पसन्द नहीं आतीं। श्रीमती प्रकाशवती ने ज़ोरदार शब्दों में इसका समर्थन किया। पवनदेव यथासाध्य औरतों की बातों का खण्डन करने की चेष्टा नहीं करते। अतः उन्हों ने मुस्कराकर दायें-बायें देखते हुए जवाब दिया—लेकिन बड़े-बड़े टीका-टिप्पणी करनेवाले तो उन्हें बहुत ऊँचा स्थान देते हैं।

प्रकाशवती ने कहा—आग में जलाने की शक्ति है, वह सभी चीज़ों को भस्म कर देती है। इस सचाई को साबित करने के लिये किसी समालोचना की जरूरत नहीं पड़ती। बायें हाथ की कानी उँगली को उस पर रखने से ही मालूम हो जाता है। अच्छी रचना का अच्छापन अगर इस तरह बात-की-बात में न समझा जा सके तो उसके समझने के लिये मैं समालोचना को पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझता।

आग में भस्मीभूत करने की शक्ति है, यह बात पवन देव जानते थे। अतः वह चुप्पी साध लिये, लेकिन गगन बेचारे को इन बातों का

क, ख, ग, भी नहीं मालूम है। इसीलिये ज़ोरदार आवाज़ में इसका खण्डन करना शुरू किया:--

मनुष्य का मन उसे छोड़कर भागता फिरता है। अनेक समय उसको बाँधकर रखना मुश्किल हो जाता है।

पृथ्वीराज ने उनको रोककर कहा—त्रेतायुग में हनुमानजी की सौ योजन की पूँछ उनके आकार से बढ़कर थी। उनकी पूँछ के सिरे पर अगर चील बैठती तो उसे उड़ाने के लिये घोड़े की डाक बैठानी पड़ती। मनुष्य का मन इस पूँछ से भी बड़ा है।

इसीलिये मन कभी-कभी इतनी दूर पहुँच जाता है कि समालोचक रूपी घोड़े की डाक के सिवा वहाँ पहुँचने का कोई दूसरा तरीका नहीं रहता। पूँछ के साथ मन का इतना ही फ़र्क है कि मन आगे दौड़ता है और पूँछ पीछे पड़ी रहती है। इसीलिये दुनिया में पूँछ हेय की दृष्टि से देखी जाती है और मन आदर की दृष्टि से।

पृथ्वीराज की बात खतम होने पर गगन ने फिर कहना शुरू किया—विज्ञान का उद्देश्य है जानना, और दर्शन का उद्देश्य है समझना; किन्तु हालत ऐसी आ पहुँची है कि विज्ञान को ही जानना और दर्शन को ही समझना, दूसरा कुछ जानने और और समझने के बजाये कठिन हो गया है। इसके लिये कितने स्कूल, कितनी किताबें और कितनी तैयारियाँ हुई हैं, इसका ठिकाना नहीं। साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन करना है, किन्तु उस मनोरंजन को हासिल करना भी आसान नहीं है। उसके लिये भी तरह-तरह की शिक्षा और सहायता की ज़रूरत पड़ती है। अगर कोई गर्व के साथ कहे कि जो शिक्षा बिना नहीं जाना जा सकता है वह विज्ञान नहीं है। जो बिना चेष्टा के समझा न जा सके वह दर्शन नहीं है, और जो बिना साधना के आनन्द दान न कर

सके, वह साहित्य नहीं है। ऐसी हालत में सिर्फ पुराने वचन और कहावतों को लेकर ही हमें पीछे पड़ा रहना होगा।

पवन ने कहा—मनुष्य के लिए तमाम काम ही धीरे-धीरे मुश्किल होते जाते हैं। जङ्गली लोग जैसे-तैसे चिल्लाकर ही उत्तेजना का अनुभव कर लेते हैं। लेकिन हमलोगों की ऐसी बदकिस्मती है कि विशेष अभ्यास-साध्य, शिक्षा-साध्य सङ्गीत के बिना हमारा मनोरंजन ही नहीं होता और सबसे बड़ी विपत्ति तो यह है कि गाने में एक बड़ी शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। इसका नतीजा यह होता है कि जो चीजें पहले आपलोगों की थीं, वे अब उन्हीं लोगों की होती जाती हैं, जो उनके लिये मिहनत व तपस्या करता है। चिल्ला सभी सकते हैं और चिल्ला कर असभ्य लोग मनोरंजन का अनुभव कर लेते हैं, लेकिन गाना सभी नहीं गा सकते और गाने में सबको आनन्द भी नहीं मिलता। अतः समाज जैसे-जैसे प्रगति करता है वैसे-वैसे अधिकारी और अनाधिकारी, रसिक और अरसिक के दो दल बनते जाते हैं।

पृथ्वीराज ने कहा—बेचारा मनुष्य को ऐसा ही बनाया गया है कि वह जितना आसान तरीका अपनाना चाहता है उतना ही वह जटिल बन्धन में जकड़ा जाता है। वह सरलता से काम कर लेने के लिये कल तैयार करता है, लेकिन कल भी खुद ही एक मुश्किल चीज़ है। वह सहज ही प्राकृतिक ज्ञान को शृंखलाबद्ध करने के लिये विज्ञान की रचना करता है, लेकिन उस विज्ञान को आयत्त कर लेना ही मुश्किल है। न्याय करने का आसान तरीका निकाला गया कानून। और उस कानून को भलीभाँति समझने के लिए एक लम्बे अरसे तक जीनेवाले मनुष्य की ज़िन्दगी का बारह आना खर्च हो जाता है। सरलतापूर्वक लेन-देन चलाने के लिए रुपये की सृष्टि हुई। आखिर

में आर्थिक मसला इतना जटिल हो गया कि उसकी मीमांसा करना ही मुश्किल हो गया। सब कुछ सरल बनाने के लिये मनुष्य ने कोशिश की, लेकिन खान-पान, आदान, आमोद-प्रमोद आदि सभी मुश्किल हो गये।

निर्झरिणीने कहा—इसी तरह कविता भी मुश्किल हो गयी है। इस समय मनुष्य दो भागों में बँट गया है। थोड़े आदमी धनी और ज्यादे ग़रीब हैं, थोड़े शिक्षित और अधिक अशिक्षित हैं। इस समय कविता भी आमलोगों की नहीं रह गयी है। वह भी एक खास तबके की निजी सम्पत्ति हो गयी है। इतना तो मैं समझ गयी, लेकिन बात यह है कि हमने कविता के बारे में यह सवाल किया है कि कविता किसी अंश में भी मुकिश्ल नहीं है। उसमें कोई ऐसी बात नहीं रखी है, जिससे हम लोग न समझ सकें। वह बहुत आसान है। अगर हम लोग न समझ सकें, तो उसमें हमारा दोष नहीं है।

इसके बाद पृथ्वीराज और पवनदेव चुप हो गये। गगनदेव ने निधड़क जवाब दिया—जो आसान है, वह सहज भी होगा, ऐसी कोई बात नहीं। बहुत समय आसान ही बहुत मुश्किल हो जाता है, क्योंकि वह अपने को समझाने के लिए किसी बाहरीतरीके का सहारा नहीं लेता। वह मौन हो खड़ा रहता है। उसे अगर अच्छी तरह समझ न लो तो पुकारने नहीं जाता कि लौट आओ, तुम मुझे समझ नहीं सके हो। प्रांजलता की यह खास खूबी है कि वह मन के साथ अत्यन्त समीप का नाता जोड़ लेती है। उसे किसी मध्यस्थ की जरूरत नहीं पड़ती। किन्तु जिन लोगों का मन मध्यस्थता के बिना कुछ भी अपना नहीं सकता, जिनको आकृष्ट करने के लिए भुलावा देना पड़ता है, उनकी समझ में प्रांजलता कभी आ ही नहीं सकती। कृष्णानगर का बनाया हुआ

भिश्ती की तस्वीर अपने रूप-रङ्ग, मशक और आकार-प्रकार से हमारे दिल में शीघ्र जगह बना लेती है, क्योंकि हम उसे रोज़ देखते हैं और उसकी बारीकियों से वाक़िफ़ हैं। लेकिन ग्रीसदेश की पत्थर की मूर्ति में रङ्ग, आकार आदि कुछ भी नहीं है, वह प्रांजल और प्रयासहीन है तौभी वह आसान नहीं है। किसी तरह के तुच्छ बाहरी कला का सहारा नहीं लेती, इसलिये भाव-सम्पद की उसे ज्यादा ज़रूरत होती है।

प्रकाशवती ने विरक्ति-भाव से कहा—तुम अपनी ग्रीस की पत्थर-मूर्ति को दूर हटाओ। इसके बारे में मैंने काफी सुना है और ज़िन्दा रहूँगी तो और भी बहुत कुछ सुनूँगी। अच्छी चीज़ों में यही दोष है कि वे हमेशा धरतो पर आँखों के सामने मौजूद रहती हैं, उनके सामने कोई पर्दा नहीं होता। उन्हें शर्म नहीं होती, उन्हें ज़ाहिर करने की किसी को ज़रूरत नहीं पड़ती, समझने के लिये किसी को परेशानी नहीं उठानी पड़ती, किसी को उन्हें देखने के लिए अपनी आँखें नहीं फाड़नी पड़ती। सिर्फ उनके बारे में एक-दो गीत बार-बार सुनने और गाने पड़ते हैं। सूरज को कभी-कभी बादलों की ओट में छिपा रहना अच्छा है, नहीं तो बादल-रहित सूरज का गौरव नहीं समझा जा सकता। मेरी समझ में तो धरती के बड़े-बड़े लोगों की गौरव-रक्षा के लिये कभी-कभी उनका अपमान की ओट में पड़ जाना अच्छा है, कभी-कभी ग्रीक-मूर्ति का अपमान फैशन में गिन लेना चाहिये। कभी-कभी यह साबित होना अच्छा है कि कालिदास के बजाय चाणक्य अच्छे कवि हैं। जो हो, यह बात तो प्रसंग के बिल्कुल बाहर है। मेरा कहना यह है कि अक्सर भाव के अभाव और आचार की बर्बरता को सरलता कहकर हम बड़ी भारी भूल करते हैं। अधिकांश समय व्यक्त योग्यता की कमी से हम भाव की अधिकता के परिचय की कल्पना

कर लेते हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये।

मैंने कहा—कलाविद्या में सरलता ऊँचे दर्जे की मानसिक उन्नति की सहचरी है। बर्बरता को सरलता नहीं कहते हैं। बर्बरता में बनावट और धूमधाम बहुत अधिक होती है। बहुत अलंकार मनोविनोद की दृष्टि से अच्छा है, परन्तु वह मन को थोर (उदास) कर देता है। हमारी भाषा में सभी स्थान पर सरलता और उन्मादहीनता की कमी देखी जाती है। हम लोग बढ़ा-चढ़ाकर, पंचम स्वर में और नाच-कूद कर कहना पसन्द करते हैं। बिना बनावट के सही बात को साफ शब्दों में ज़ाहिर कर देने की हमारी इच्छा नहीं होती, क्योंकि हमारे भीतर पुराने समय से चली आयी हुई बर्बरता के कुछ चिन्ह अभी शेष हैं। सचाई जब प्रांजल भाषा में हमारे सामने आती है, तब उसकी गंभीरता छिप जाती है और हम उसे देख नहीं पाते। भाव का सौन्दर्य जब तक कृत्रिम भूषण और तरह-तरह के अलङ्कारों से लदकर नहीं आता, तब तक हम लोग उसका आदर ही नहीं करते।

पवन ने कहा—संयम सौष्ठवता का एक मुख्य लक्षण है। भद्र लोग कभी बढ़ा-चढ़ाकर अपने अस्तित्व का ढोल नहीं पीटते। वे कोई ऐसा काम नहीं करते, जिससे दस आदमी की नज़र उन पर पड़े। नम्रता से वे लोग अपनी मर्यादा की रक्षा करते हैं। बहुत समय आम लोगों के समीप संयत और नम्रभाव से रहने के बजाय बनावट और सजधज का ही ज्यादा आदर होता है, वही पहले उनको खींचता है; लेकिन उसमें सभ्यता की बदकिस्मती नहीं, बल्कि आम लोगों की बदकिस्मती समझनी चाहिये। साहित्य और आचार-व्यवहार का संयम उन्नति का एक मुख्य लक्षण है। ज्यादती और बनावट के ज़रिये दृष्टि आकर्षित करने की चेष्टा करनी बर्बरता है।

कौतुक-हास्य

जाड़े का मौसम है। पौ फट रही है। एक फेरीवाला 'खजूर का रस' पुकारता हुआ चला आ रहा है। कुहरे का धुँधलापन अभी साफ नहीं हुआ है। बाल-सूर्य की किरणें नीले आकाश से झाँक रही हैं। पवन देव चाय पी रहे हैं, पृथ्वीराज अखबार पढ़ रहे हैं और गगनदेव गले में बहुरङ्गी कनपट्टी लपेटे एक बहुत मोटी लाठी लिये हुए अभी हाज़िर हुए हैं।

समीप ही द्वार के पास खड़ी होकर निर्झरिणी और प्रकाशवती एक दूसरे की कमर में हाथ डाले हुए किसी विषय पर क़हक़हा लगाती लोट-पोट हो रही थीं। पृथ्वीराज और पवनदेव समझते थे कि नीली चादर ओढ़े हुए गगनदेव ही इस क़हक़हे के मूल कारण हैं।

इतने में गगनदेव का ध्यान भी उस क़हक़हे की ओर खिंचा। हमारी ओर कुर्सी फेरकर उन्होंने कहा—दूसरे किसी बेजान-पहिचान वाले आदमी को भ्रम हो सकता है कि दो सहेलियाँ किसी बात पर हँसी-मज़ाक कर रही हैं; परन्तु दरअसल में यह माया है। पक्षपाती ब्रह्मा ने पुरुष जाति को बिना हास्य-प्रसंग के हँसने की ताक़त ही नहीं दी है; परन्तु औरतों में ऐसी ताकत है कि वे योंही हँसा करती हैं। कब किस लिये हँसती है, इस बात को विधाता भी नहीं समझ सकते, मनुष्य की बात तो दूर रही! चकमक पत्थर में प्राकृतिक आग की चिनगारी नहीं होती, बल्कि उसको ज़ोर से रगड़ने पर आग की लत्ती निकलती है, लेकिन माणिक का टुकड़ा अपने आप चमकता रहता है। औरतें एक मामूली-सी बात पर हँसना जानती हैं और अकारण ही रो

भी देती हैं। कारण बिना कारज नहीं होता—यह कठिन नियम केवल मर्द के लिये ही लागू है।

पवनदेव चाय का प्याला भरते हुए बोले—सिर्फ़ औरतों की हँसी ही नहीं, हास्यरस ही मुझे असंगत-सा प्रतीत होता है। दुःख में रोते हैं और सुख में हँसते हैं, इतना तो मैं अच्छी तरह समझता हूँ; परन्तु समझ में नहीं आता कि हँसी-मज़ाक पर हम क्यों हँसें, वह तो असली सुख नहीं है। कोई मोटे शरीरवाला आदमी अगर चौकी के टूट जाने से गिर पड़े, तो हमें तो कोई सुख नहीं होता; परन्तु यह तय है कि इस मौक़े पर हम बिना हँसे न रहेंगे। विचार कर देखें तो इस पर अचरज होगा।

पृथ्वीराज ने कहा—दूर रखो अपने इस विचार को! बिना विचारे अचरज करने की बातें इस दुनिया में बहुत हैं। पहले उन्हीं पर अचरज करो तो पीछे विचार कर अचरज करना। कोई पागल अपने घर की फ़र्श साफ़ करने के लिये पहले अच्छी तरह झाड़ू लगाता है, इतने से जब उसे संतोष नहीं होता तो कुदाल से उसे खुरचना शुरू करता है। वह समझता है, धूल में ज़मीन को खुरचकर आसमान में फेंक देने पर उसे एक साफ-सुथरी फ़र्श मिलेगी। कहने की ज़रूरत नहीं, उसकी सारी मेहनत बेकार होती है। भाई पवनदेव! अगर अचरज के ऊपरी हिस्से को झाड़कर आखिर में सोचकर अचरज करने लगो तो मुझ मित्र-मण्डली को विदाई दो।

पवनदेव ने हँसते हुए कहा—भाई पृथ्वीराज, मेरी अपेक्षा तुम्हीं ज्यादा सोचा करते हो। अगर खूब सोच-समझकर देखा जाता तो तुम्हीं इस दुनिया की एक बड़ी अचरज-भरी चीज़ होते और तुम अगर अधिक न सोचते, तो उस फ़र्श साफ करनेवाले बंगले के आदर्श से

मेरी तुलना करने की कल्पना भी न करते।

पृथ्वीराज ने कहा—माफ़ करना भाई, तुम मेरे पुराने दोस्त हो, इसीलिये मेरे मन में इतना शक हुआ था। खैर, जो हो, सवाल यह था कि मज़ाक पर हम इतना हँसते क्यों हैं? कोई अच्छी बात ज्योंही हमारे सामने आयी कि उसी वक्त हमारे गले के अन्दर से विचित्र शब्द बाहर होने लगता है और हमारे दाँत खिल उठते हैं। मनुष्य-सरीखे सभ्य जीव के लिए ऐसी असंगत और असंयत मुद्रा-विकृति यह क्या कम अचरज और अपमान की बात है? सात समुद्र पार के लोग भय और दुःख के चिन्ह को प्रकट करने में लज्जा समझते हैं। यही लज्जा हमारी प्राच्य जाति का सभ्य समाज भी करता है।

पवन ने बीच ही में पृथ्वीराज की बात काटकर कहा—इसका कारण यह है कि हमारे मतानुसार कौतुक को मनोविनोद समझना असंगत और भ्रान्तिमूलक है। वह बच्चों का ही शोभा देता है और उन्हीं के योग्य है। इसीलिये कौतुकमात्र का हमारे देश के हो महापंडित लड़कपन कहकर उससे नफ़रत करते हैं। किसी गीत में सुना था कि कृष्णजी नींद से उठकर, हाथ में हुक्का लेकर राधा की कुटिया में आग लेने गये थे। इस बात को सुनकर श्रोताओं की मण्डली हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी। लेकिन हुक्का हाथ में लिए हुए कृष्ण की कल्पना न तो सुन्दर ही है और न तो किसी को आनन्द पहुँचाने वाली ही है, तौभी जब हम क़हक़हे लगाते हैं और उसमें आनन्द पाते हैं, तो हम लोगों का यह आचरण हँसी के लायक और अमूलक नहीं है तो क्या है? इसीलिये हमारा पंडित समुदाय इस तरह की चपलता का अनुमोदन नहीं करता। कौतुक-हास्य एक तरह का शारीरिक आचरण है, यह मांसपेशी का उत्तेजनामात्र है। इसके साथ हमारे सौन्दर्य-बोध

का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिये व्यर्थ के मामूली कारणों को लेकर थोड़ी देर के लिये बुद्धि को ताक पर रख देना और साहस को खो देना, पंडितों के लिये बेशक शरम की बात है।

पृथ्वीराज ने कहा—यह बात तो सही है। किसी मशहूर कवि की यह कविता शायद तुम लोगों को मालूम होगी:—

"अंधा गुरु बहरा चेला, माँगे गुड़ लावे ढेला।"

प्यासा आदमी जब पानी माँगे और उस समय अगर उसके सामने आधा बेल लाकर रख दिया जाय, तो दूसरे लोगों को क़हक़हे लगाने का कोई युक्ति-संगत कारण नहीं देखा जाता। प्यासे की आरज़ू के मुताबिक अगर उसके सामने एक लोटा पानी लाकर रख दिया जाता तो हमारा क़हक़हा लगाना युक्ति-संगत होता—हम खुशी महसूस कर सकते थे। लेकिन झटपट उसके सामने बेल का एक टुकड़ा लाकर रख दिया जाता है, तो मैं नहीं समझता कि क्योंकर हमें हँसी आती है इस सुख और कौतुक के बीच जब श्रेणीगत अलगाव है, तब दोनों के जुदा-जुदा रूप के बँटवारे होने चाहिये। लेकिन नियति का प्रबन्ध ही ऐसा है कि कहीं तो ज़रूरत से ज्यादा खर्च और कहीं जरूरत भी पूरी नहीं होती। एक ही हँसी से आनन्द और कौतुक दोनों का ही काम निकाल लेना उचित नहीं हुआ है।

गगन ने कहा—प्रकृति के सिर व्यर्थ का दोष मढ़ते हो। आनन्द में हम स्मितहास्य करते हैं और कौतुक में हम अट्टहास कर उठते हैं। भौतिक जगत में आलोक और वज्र से इसकी तुलना की जा सकती है। एक आन्दोलन जनित और स्थायी है, दूसरा संघर्ष जनित और आकस्मिक है। मैं समझता हूँ कि अगर किसी ऐसे सिद्धान्त का इज़ाद हो जाय कि एक ही से अलग-अलग कारणों के जरिए प्रकाश उत्पन्न

होते हैं तो इसी सिद्धान्त को अपना करके हम लोग सुख-हास्य और कौतुक-हास्य का कारण निकाल लेंगे।

पवनदेव ने गगन की अजीबो-गरीब कल्पना पर ध्यान न देकर कहा—मनोरंजन और कौतुक वास्तविक सुख नहीं है, वह नीचे दर्जे के सुख हैं। थोड़ी मात्रा में दुःख और पीड़ा हमारी चेतना के ऊपर जो चोट करते हैं, उससे हमें आनन्द मिल सकता है। प्रतिदिन समय पर बिना कष्ट के हम लोग रसोइये का बनाया हुआ भोजन खाते हैं, उसे हम लोग मनोरंजन नहीं कहते; लेकिन जिस दिन हम 'वन भोज' करते हैं, उस दिन नियम तोड़कर कष्ट सहन कर, असमय पर हम लोग न खाने योग्य भोजन करते हैं और उसी को मनोरंजन कहते हैं, आमोद कहते हैं। आमोद के लिये जितना कष्ट हम लोग उठाते हैं, उससे हमारी चेतना शक्ति ओजित हो जाती है। कौतुक भी उसी श्रेणी का मनोरंजक दुःख है। श्रीकृष्ण के बारे में प्राचीन समय से हमारे हृदय में जैसी भावना घर कर गयी है, उसके विरुद्ध जब हम ऐसी कल्पना करते हैं कि वह हुक्का हाथ में लिये हुए राधा की कुटिया में आग लेने जा रहे हैं तब एकाएक हमारी पहली धारणा को चोट पहुँचती है। उस आघात से थोड़ी पीड़ा पहुँचती है। लेकिन उस पीड़ा का फल इतना सीमित होता है कि उससे हमें जिस परिमाण में दुःख होता हैं, हमारी चेतना के अचानक चंचल हो जाने के कारण उसकी अपेक्षा अधिक सुख होता है। उस हद को थोड़ी भी पारकर जाने पर वह कौतुक असली पीड़ा के रूप में परिणत होता है। अगर वास्तविक भक्ति के कीर्त्तन के अवसर पर कोई अल्हड़ रसीला लड़का अचानक कृष्ण भगवान की काल्पनिक ताम्र-कूट-पिपासा का गान गाता तो उससे हँसी नहीं आती, क्यों कि इस क्षण वह चोट इतनी सख्त होती

कि शीघ्र वह क्रोध का और उत्तेजना की शकल बनाकरके उस रसीले लड़के की पीठ की ओर प्रतिघात की इच्छा से दौड़ पड़ती। इसलिए मेरी समझ में चेतना और कौतुक का पीड़न एक ही वस्तु है—आमोद भी इसी का नाम है। इसीलिये स्मित-हास्य से सच्चा आनन्द प्रकट होता है और उच्च हास्य से आमोद और कौतुक। यह हास्य मानो अचानक एक तेज़ चोट की पीड़ा से शब्द करता हुआ उबल उठता है।

पृथ्वीराज ने कहा—तुम जब मनचली थ्योरी के साथ कोई मनचली उपमा देते हो, तब उसके आमोद में हमें सच-झूठ का ज्ञान ही नहीं रहता। यह तो सभी जानते हैं कि कौतुक के समय हम केवल उच्च हास्य ही नहीं करते, अपितु स्मित-हास्य भी किया करते हैं। कभी-कभी मन-ही-मन हँसते हैं; किन्तु यह बात तो मुख्य नहीं है। मुख्य बात यह है कि कौतुक से हमारे चित्त में उत्तेजना पैदा हो जाती है और चित्त की स्वल्प उत्तेजना हमारे लिये सुखकारक होती है। हमारे भीतर-बाहर एक सुयुक्तिसङ्गत नियम और शृङ्खला का अधिकार है—सारे व्यापार चिरभ्यस्त होते हैं। इस अनुपम नियम के अन्तर्गत जब हमारा मन निधड़क अपना काम करता रहता है, तब उसके अस्तित्व का हम अनुभव कर पाते हैं, पर ज्योंही उस नियमित व्यापार के अन्दर किसी नवीनता की सृष्टि होती है, त्योंही हमारा चित्त-प्रवाह सहसा बाधा पाकर दुर्निवार हास्य-तरङ्ग सन्तप्त हो जाता है। वह बाधा आराम की नहीं है और न खूबसूरती तथा सुविधा की ही है। उसी प्रकार वह स्वल्प दुःख भी नहीं है। इसी कारण कौतुक की वह विशुद्ध उत्तेजना हमें आनन्ददायिनी प्रतीत होती है।

मैंने कहा—केवल अनुभव से ही सुख मिल सकता है, अगर उसके

गुरुतर स्वार्थ-हानि न मिली हो। यहाँ तक कि भयभीत हो जाने में भी सुख है, अगर उसके साथ वास्तविक डर का कारण न मिला हो। बच्चे भूत-प्रेत की कहानी बड़े शौक से सुना करते हैं। इसका वजह यह है कि हृदय के कम्पन से हमें जो उत्तेजना मिलती है, उससे हमारा चित्त चंचल हो जाता है। वह चंचलता भी आनन्ददायिनी होती हैं। सीता के वियोग में भगवान् राम के दुःख से हम दुःखी होते हैं। 'ओथेलो' की अमूलक असूया हमें दुःखद मालूम होती है। अपनी कन्या की कृतघ्नता के चोट से मर्माहत राजा का कष्ट देखकर हम भी क्षुब्ध हो जाते हैं, लेकिन उन कष्टों से हमारे हृदय में अगर दुःख का संचार न होता तो वे काव्य हमारे समीप तुच्छ प्रतीत होते। दुःखान्त काव्य को ही हम सुखान्त काव्य की अपेक्षा अधिक आदर करते हैं, क्योंकि दुःख के अनुभव से हमारा चित्त आन्दोलित होता है। कौतुक मन में अचानक चोट करके हमारी मामूली अनुभव-क्रिया को जागृत कर देता है। इसीलिये बहुतेरे रसज्ञ मनुष्य शरीर के आकस्मिक चोट को परिहास समझते हैं। बङ्गाली औरतें कोहबर में दुलहे का कान मल करके या और किसी तरह से तङ्ग कर बड़ा मज़ा उठाती हैं और इसी को हास्य-रस की आख्या देती है। अचानक बम की आवाज़ करना हमारे देश में समारोह का एक अङ्ग समझा जाता है। इसे हम लोग भक्तिरस की अवतारणा कहते हैं।

पृथ्वीराज ने कहा—दोस्तो! ठहरो। बात एक प्रकार से समाप्त हो गयी। जहाँ तक पीड़न से सुख का अनुभव होता है, तुम उसका सरहद पार गये हो। इस समय कष्ट बढ़ता जा रहा है। हम भलीभाँति समझते हैं—सुखान्त की हँसी और दुःखान्त के आँसू के तारतम्य पर निर्भर करती।

गगनदेव ने कहा—जैसे बरफ के ऊपर पहले-पहल सूरज की रोशनी पड़ने पर वह चमकने लगता है और तेज धूप होने पर वह गल जाता है, यही न ? अच्छा, दो-एक हास्यरस और करुणारस के नाटकों का नाम लो। मैं उनमें से मिशाल खोजकर निकाल देता हूँ।

इतने में प्रकाशवती और निर्झरिणी हँसती हुई वहाँ आ पहुँचीं। प्रकाशवती ने कहा—तुम लोग क्या साबित करने के लिए कमर कसे हो ?

पृथ्वीराज ने कहा—हम लोग साबित करते थे कि तुम दोनों बिना कारण के ही क़हक़हे लगा रही हो।

यह सुनकर प्रकाशवती और निर्झरिणी ने एक दूसरे का मुँह ताका। फिर दोनों ज़ोरों से खिलखिला उठीं।

गगनदेव ने कहा—मैं साबित करने को था कि हम लोग 'सुखान्त' में दूसरे की कम पीड़ा देखकर हँसते हैं और 'दुखान्त' में दूसरे की अधिक पीड़ा देखकर रोते हैं।

प्रकाशवती और निर्झरिणी के मधुर और मिले-जुले हास्य से फिर कमरा गूँज उठा और व्यर्थ में हँसी को उभाड़ने के कारण दोनों एक दूसरे को धमकाती हुई शर्म से कमरे से बाहर निकल गयीं।

पुरुषों की सभ्य मण्डली इस हँसी को देखकर दङ्ग रह गयी ; लेकिन पवनदेव गंभीरतापूर्वक बोले—गगन महाराज, बहुत दिन चढ़ आया। अब तुम इस रङ्गीन नागपाश का बन्धन खोल डालो तो तन्दुरुस्ती को कोई हानि नहीं होगी।

पृथ्वीराज ने गगन की लाठी उठाली और देर तक ग़ौर से उसकी ओर देखते हुए कहा—गगनजी, तुम्हारा यह मुग्दर क्या किसी 'सुखान्त' का विषय है या 'दुखान्त' का साधन ?

कौतुक हास्य की मात्रा

उस दिन की डायरी में हम लोगों की कौतुक हास्य विषयक आलोचना पढ़कर प्रकाशवती ने लिखा—"एक दिन प्रातः मैं और निर्झरिणी दोनों मिलकर क़हक़हे लगा रही थीं। क्या ही सुहावना वह सवेरा था और क्या ही अद्भुत दोनों सहेलियों की हँसी थी! आदिकाल से लेकर आजतक चंचलता अनेकों स्त्रियों में पायी गयी है और इतिहास में उसका अच्छा-बुरा फल अनेक रूपों में स्थायी है। स्त्री की हँसी बिना कारण हो सकती है, लेकिन उसीसे अनेक मदाक्रान्ता, यहाँ तक कि शार्दूलविक्रीड़ित छन्द तथा कितने ही त्रिपदी, चतुष्पदी और चतुर्दशपदी आदि की उत्पत्ति हुई। इसके अनेकों सबूत मिल सकते हैं। स्त्री अपने सरल स्वभाव के कारण अनायास हँसती हैं और उसे देख-देखकर अनेकों पुरुष योंही रोया करते हैं। कितने ही पुरुष गले में घड़ा बाँधकर डूब मरते हैं, अनेक पदों की तुकबन्दी करने बैठ जाते हैं और बहुतेरे तरसकर रह जाते हैं। इस बार मुझे एक नया अनुभव हुआ है कि दार्शनिकों के मस्तिष्क से दर्शन उबल उठती है; लेकिन सच पूछो तो तत्व-निर्णय की अपेक्षा पहले कहीं तीन तरह की अवस्थायें अच्छी हैं।" इतना लिखकर प्रकाशवती ने उस दिन हम लोगों के हास्य विषयक सिद्धान्त को एकबारगी युक्तिहीन और अप्रमाणिक सिद्ध कर दिया।

मेरा पहला निवेदन यह है कि हम लोगों के उस दिन के तत्व में किसी युक्ति की प्रबलता न थी। इसीलिये प्रकाशवती का कुपित होना

मुनासिब नहीं हुआ है। क्योंकि नारी-हास्य से धरती पर जितने अनर्थ होते रहते हैं, उनमें बुद्धिमान का बुद्धिभ्रंश भी एक है। जिस दशा में हमारा दर्शन का प्रलाप पहुँच गया था, उस दशा में अगर हम चाहते तो कविता भी लिखने बैठ जाते और गले में रस्सी बाँधकर डूब मरना भी असम्भव न था। दूसरा निवेदन यह है कि उनके हास्य से हम लोग तत्व तलाश निकालेंगे, इस बात की जैसे उन लोगों ने भी कल्पना न की थी कि वे हम लोगों की तत्वालोचना से युक्ति तलाश निकालने की चेष्टा करेंगी।

जीवनभर के सत्यान्वेषण के बाद न्यूटन ने कहा था कि—"मैं ज्ञान रूपी समुद्र के किनारे केवल कङ्कड़ इकट्ठा कर रहा हूँ।" हम लोग चार बुद्धिमान मिलकर पलभर की बातचीत से कङ्कड़ इकट्ठा करने की भी आशा नहीं कर सकते। हम तो केवल बालू की दीवार ही खड़ी करते हैं। इसी बहाने ज्ञान रूपी समुद्र के किनारे जाकर थोड़ा-समुद्र-वायु सेवन कर आते हैं। बस, यही हमारा तत्वालोचना का उद्देश्य है। रत्न तो नहीं ले आते, पर स्वास्थ्य अवश्य लाते हैं। इसके अतिरिक्त हमें कभी इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि बाल की दीवार रहेगी या ढह जायगी।

मैं इसे मंजूर नहीं करता कि रत्न की अपेक्षा स्वास्थ्य कम क़ीमती है। बहुत समय रत्न नकली साबित होता है, पर स्वास्थ्य को स्वास्थ्य के सिवा और कुछ नहीं कह सकते। हम पंचभौतिक सभा के पाँच सदस्य मिलकर आज तक किसी मामूली सिद्धान्त पर भी पहुँचे होंगे, इसमें मुझे सन्देह ही है। तथापि जितनी बार हमारी सभा की बैठक हुई है, हमारी चेतनाशक्ति और मनोवृत्तियाँ चंचल हो गयी हैं और उसी से हमें आनन्द और आराम मिला है, इसमें सन्देह नहीं। इस

आनन्द के कारण हमारे खाली हाथ घर लौटने का दुःख एकदम दूर हो गया है।

किले के मैदान में छँटाक भर भी अनाज पैदा नहीं होता, तौ भी ज़मीन बेकार नहीं है। हमारी पंचभौतिक सभा भी हम पाँचों का किले का मैदान है। वहाँ हम लोग सच्चा अन्न पैदा करने नहीं जाते, अपितु सच्चा आनन्द उठाने जाते हैं।

इसीलिये इस सभा में अगर किसी बात की पूरी मीमांसा न हो तो कोई नुकसान नहीं। सत्य का कुछ अंश पाने पर भी हमारा काम चल जाता है। यहाँ तक कि सत्य के खेत को गहराई तक न जोतकर उसके ऊपर हलके पाँव से चले जाना ही हमारा उद्देश्य होता है।

और, दूसरी ओर से एक मिशाल देकर भी मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। रोग के वक्त डाक्टर की दवा से बड़ा उपकार होता है, पर स्वजनों की सेवा से रोगी को अधिक आराम मिलता है। जर्मन विद्वानों की पुस्तकों में तत्वज्ञान के जो चरम सिद्धान्त हैं, उन्हें औषधि की गोली कह सकते हैं, लेकिन उनमें मानसिक सुश्रूषा कुछ भी नहीं है। पंचभौतिक सभा में हम लोग जिस तरह सत्य की आलोचना करते हैं, उसे रोग की चिकित्सा भले ही न कहें, लेकिन उसे रोग की शुश्रूषा कहना ही पड़ेगा।

अब अधिक उपमा देने की आवश्यकता नहीं। दरअसल बात यह है कि उस दिन हम चार विद्वानों ने मिलकर हास्य के बारे में जो बातें छेड़ी थीं, उनमें सभी अधूरी रह गयीं। अगर किसी बात के फल तक अग्रसर होने की हम लोग चेष्टा करते तो सभाके कथापकथन सिद्धान्त का उलंघन करते।

कथोपकथन सभा का एक मुख्य नियम है—सहज और तेजी से

अग्रसर होना। अर्थात् मानसिक दौड़ लगाना। अगर हमारे पैरों में ताला न होता, दोनों पैर अगर बर्छे की तरह नोकीले होते तो मिट्टी की ओर हम बहुत नीचे तक प्रवेश कर सकते थे, पर एक डग आगे न बढ़ सकते थे। कथोपकथन सभा में अगर हम लोग प्रत्येक बात की तह तक पहुँचने की चेष्टा करते तो एक जगह अवश होकर अड़ जाते। कभी-कभी ऐसी हालत हो जाती है कि चलते-चलते हम कीचड़ में धँस जाते हैं। वहाँ ज्यों-ज्यों हम पैर फेंकते हैं, त्यों-त्यों धसता जाता है और चलना कठिन हो जाता है। कितने विषय ऐसे भी होते हैं, जिनकी आलोचना करते समय प्रतिपल तह की ओर अपने आप बढ़ते जाना पड़ता है। कथोपकथन के समय ऐसे अनिश्चित सन्देहपूर्ण विषयों की ओर पैर ही न बढ़ाना चाहिये। वह ज़मीन पर्यटनकारी सभ्य लोगों के लिए उपयोगी नहीं है। जिनका व्यवसाय खेती है, उन्हीं के लिये वह उपयुक्त है।

खैर जो हो, दरअसल मेंहमारे उस दिन के सवाल का मतलब यह था कि जैसे दुःख की रुलाई होती है वैसे ही सुख हँसी भी होती है; लेकिन बीचमें कौतुक कीहँसी कहाँ से कूद पड़ी? कौतुक एक रहस्यपूर्ण चीज़ है। जीव-जन्तु भी सुख-दुख अनुभव करते हैं। पर वे तो कौतुक का अनुभव नहीं करते। अलङ्कार-शास्त्र में जिन कई एक रसों का ज़िक्र है, वे सभी इन जन्तुओं के अपरिणत, अपरिष्कृत साहित्य में मिलते हैं केवलहास्यरस ही नहीं मिलता। कुछ-कुछ बन्दर के स्वभाव में इस रस का आभास पाया जाता है, किन्तु बन्दर के साथ मनुष्य का अनेक विषय में समानता है।

जो व्यवहार असङ्गत है, उससे मनुष्य को दुःख पाना चाहिये। उस में हँसी आने की कोई आवश्यकता न थी। पीछे जब चौकी नहीं है, तब चौकी पर बैठता हूँ, ऐसा विचार करके अगर कोई ज़मीन पर गिर

पड़े तो इस पर दर्शकों को सुख मिलने का मैं कोई युक्तिसङ्गत कारण नहीं ढूँढ़ पाता। ऐसा एक भी मिशाल नहीं है। कौतुकमात्र ही में एक ऐसा दुःख होता है, जिससे मनुष्य को सुखी न होकर दुःखी होना चाहिये।

हम लोगोंने उस दिन बातों-ही-बातों में इसका एक कारण ठीक किया था। हम लोग कहते थे कि कौतुक की हँसी और आमोद-प्रमोद की हँसी एक ही श्रेणी की है। दोनों तरह के हास्यों में प्रवल भाव है। इसीलिये हमें शक हुआ था कि शायद आमोद और कौतुक के भीतर कोई स्वाभाविक एकता है। उसी को ज़ाहिर करने से कौतुक-रहस्य का भेद खुल जा सकता है।

मामूली प्रकार के सुख के साथ आमोद का कुछ अलगाव है। नियम भङ्ग के साथ जो एक पीड़ा का उद्रेक होता है, अगर वह पीड़ा न होती, तो आमोद नहीं हो सकता था। आमोद नित्य नैमित्तिक और सहज नियम सङ्गत नहीं है। वह कभी किसी दिन हो जाया करता है। और उसका उद्रेक करने के लिए कोशिश की जरूरत पड़ती है। उस पीड़न और कोशिश के संघर्ष से मन में जो एक प्रकार की उत्तेजना होती है, वही आमोद का मूल साधन है।

हम लोगों ने कहा था कि कौतुक में भी एक नियमभङ्ग-जनित पीड़ा है। वह पीड़ा अगर बहुत अधिक परिमाण में नहीं हो तो हमारे मन में एक ऐसी उत्तेजना होती है कि उस आकस्मिक उत्तेजना की चोट से हम बिना हँसे नहीं रह सकते। जो व्यवहार सुसंगत होता है, वह सदा विषम संगत होता है, थोड़े ही में उसका नियम भंग हो जाता है। यथा समय और यथा स्थान अगर सभी घटनाएँ नियम के अनुसार घटती जाँय तो मन में किसी प्रकार की उत्तेजनता नहीं होती। परन्तु

जब वे ही घटनाएँ यकाएक होती हैं, या होती ही नहीं, या होती भी हैं तो किसी दूसरे ढंग से—तब इस आकस्मिक क्षणभर की पीड़ा से मन में एक तरह की चेतना की अनुभूति होती है और इसी वजह से हम हँस उठते हैं। उस दिन हम लोग यहीं तक बढ़े थे। लेकिन आगे कुछ कहना बाकी न रह गया, ऐसी बात नहीं। अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है।

श्रीमती प्रकाशवती ने पूछा—अगर हमारे चार पंडितों का सिद्धान्त सही मान लिया जाय तब तो राह चलते ठोकर खाने अथवा तनिक बदबू आने पर हमें हँसी आनी चाहिये थी। कम-से-कम उत्तेजना जनित सुख तो अवश्य ही होना चाहिये था।

इस सवाल के द्वारा हमारी मीमांसा का खण्डन नहीं होता। हाँ, वह सीमित हो जाती है। इस सवाल से केवल यही साबित होता है कि पीड़न मात्र से ही कौतुकजनक उत्तेजना नहीं पैदा होती। इसलिए यहाँ देखना चाहिये कि कौतुक पीड़न का मुख्य साधन क्या है?

जड़ प्रकृति में करुणरस भी नहीं है और हास्यरस भी नहीं। एक बड़ा पत्थर छोटे पत्थर को पीस डालता है तो भी हमें दया नहीं आती। और समतल क्षेत्र में चलते-चलते जब हम एक अजीबोगरीब पहाड़ी चोटी देखते हैं तब भी उसे देखकर हमें हँसी नहीं आती।

नदी-नाले, पहाड़, समुद्र इत्यादि के अन्दर कभी-कभी आकस्मिक असामंजस्य देखा जाता है। यह बाधाजनक, पीड़ाजनक और विरक्ति-जनक भले ही हो, पर कौतुकजनक तो कभी नहीं होता। सचेतन पदार्थ सम्बन्धी असंगत घटनाओं के सिवा केवल जड़पदार्थों द्वारा ही हमें हँसी नहीं आती। क्यों नहीं आती, इसका सबब निश्चय कर कहना मुश्किल है; पर आलोचना कर देखने में हानि ही क्या है?

हमारी भाषा में कौतुक और कौतूहल शब्द के अर्थ में सम्बन्ध है। संस्कृत साहित्य में बहुत जगह एक अर्थ में दोनों शब्द विकल्प से प्रयोग किए जा सकते हैं। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि कौतूहल वृत्ति के साथ कौतुक का खास सम्बन्ध है।

कौतूकहल का एक मुख्य अङ्ग है—नवीन की स्पृहा। नवीनता कौतुक का भी एक मुख्य उपकरण है। असङ्गत के अन्दर जैसी विशुद्ध नवीनता होती है, वैसी सङ्गत के अन्दर नहीं होती।

परन्तु पदार्थ-असंगति से इच्छाशक्ति का खास सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध जड़ पदार्थ के अन्दर नहीं होता। अगर साफ राह से चलता हुआ अचानक बदबू पाऊँ तो मुझे निश्चय हो जायगा कि पास ही कहीं बदबू जरूर है—इसीलिये ऐसा होता है। मैं चौकन्ना हो जाता हूँ। किसी प्रकार की मानसिक उत्तेजना नहीं होने पाती। जड़ प्रकृति में जिन कारणों से जो काम हो रहे हैं, उनमें किसी तरह की तब्दीली नहीं हो सकती। यह स्थिर सिद्धान्त है।

परन्तु राह चलते अगर अचानक देखें कि एक बड़ा बूढ़ा आदमी खेमटा नाच रहा है, तो वास्तव में वह हमें असङ्गत प्रतीत होता है। क्योंकि वह आवश्यक और नियम के अनुसार नहीं है। बूढ़े से इस प्रकार के आचार की कभी प्रत्याशा नहीं करते; क्योंकि उसमें इच्छा-शक्ति का अस्तित्व है। वह जानबूझकर नाच रहा है। यह अगर चाहता तो न नाचता। जड़ में कोई पदार्थ शायद अपनी इच्छा के अनुसार नहीं होता। इसीलिये जड़ में कोई चीज़ असङ्गत और कौतुक-प्रद नहीं प्रतीत होती। चाय के चम्मच अगर अचानक चाय के प्याले से उछलकर दावात में गिर पड़े तो यह चम्मच के लिये हँसी की बात नहीं होती, क्योंकि भावाकर्षण शक्ति के नियम का उलंघन करना उसके

बूते की बात नहीं है। लेकिन अगर कोई अन्यमनस्क लेखक अपने चाय के चम्मच को दावात में डुबाकर चाय पीने की चेष्टा करे तो यह अवश्य ही हँसी की बात होगी। जैसे नीति जड़ पदार्थ में नहीं है, वैसे ही असङ्गति भी जड़ में नहीं है। मनः पदार्थ जहाँ प्रवेशकर शक पैदा कर देता है, वहीं औचित्य और अनौचित्य, सङ्गत और असङ्गत का सवाल उठता है।

कौतूहल अनेक अवसरों पर अत्यन्त कठोर प्रतीत होता है। सिराजुद्दौला दो आदमियों की दाढ़ी को एक दूसरे से बाँधकर उनकी नाकों में सूँघनी ठूँस देते थे। ऐसा सुना जाता है, दोनों के छींकने पर सिराजुद्दौला प्रसन्न होते थे। इसमें तो असङ्गति का लेश भी नहीं है। नाक में सूँघनी डालने से छींक आयेगी ही, किन्तु यहाँ भी इच्छा के साथ काम का असामंजस्य है। जिनकी नाकों में सूँघनी दी जाती है, वे नहीं चाहते कि छींके, क्योंकि छींकते ही उनकी दाढ़ी में तुरन्त खिंचाव पड़ता है। इतने पर भी उन्हें छींकना ही पड़ता है।

इसी तरह इच्छा के अवस्था कि असङ्गति, उद्देश्य के साथ उपाय की असङ्गति और बात के साथ काम की असङ्गति होने में निष्ठुरता का परिचय मिलता है। बहुत समय जिसके विषय में हम हँसी करते हैं, वह अपनी अवस्था को हास्य का विषय नहीं समझता। इसीलिये पाँच भौतिक सभा में गगन ने कहा था कि सुखान्त और दुःखान्त केवल पीड़न के भिन्न-भिन्न नतीजा है। 'सुखान्त' में जिनकी निष्ठुरता प्रकट होती है, उससे हमें हँसी आती है और 'दुःखान्त' में पीड़न की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि हमें रुलाई आ जाती है। टाईटीनिया (घोड़ी) एक अपूर्व मोह के वशीभूत होकर गदहे के निकट जो आत्मविसर्जन करती है, अवस्था भेद और पात्र के कारण वही पीछे शोक का रूपधारण

करता है।

असङ्गति दुःखान्त का भी एक विषय है और सुखान्त का भी। इच्छा के साथ अवस्था की असङ्गति प्रकट होती है। फलस्टाफ विण्डसर वासिनी रङ्गिनी की प्रेम लालसा में निशङ्क चित्त से अग्रसर होते हैं, परन्तु बड़ी आपत्ति में पड़कर उन्हें पीछे लौटना पड़ता है। रामचन्द्रजी जब रावण को मार, बनवास की प्रतिज्ञा पूरीकर राज्य को लौट आये और दाम्पत्य सुख की चरमसीमा पर पहुँच गये, उसी समय अचानक कहाँ से विपत्ति के बादल टूट पड़े, गर्भिणी सीता को जङ्गल में छोड़ना पड़ा। दोनों मिशालों में ही आशा के साथ फल और इच्छा के साथ अवस्था की असङ्गति देखी जाती है। इसलिये साफ प्रकट हो जाता है कि असङ्गति दो प्रकार के होते हैं—एक हास्यजनक और दूसरा दुःखजनक। विरक्तिजनक, विस्मयजनक, और दोषजनक को भी हम दूसरी श्रेणी में गिनते हैं।

दूसरे शब्दों में असंगति जब हमारे मन पर हल्की चोट करती है—जबतक उसकी चोट मर्मस्थान तक नहीं पहुँचती, तबतक हमें हँसी ही आती है, परन्तु जब वह हमारे गुह्य स्थान को हिला देती है, जब पीड़ा असह्य हो जाती है, तब हमें दुःख मालूम होता है। शिकारी जब देर ताक ताक में बैठने के बाद दूर की किसी सुफेद चीज़ पर हंस के भ्रम से गोली दागता है और समीप जाकर देखता है कि वह फटे हुए कपड़े का एक चीथड़ा है, तब उसे निराशा होती है। हम भी उस पर हँसते हैं; परन्तु एक आदमी किसी चीज़ को अपनी ज़िन्दगी का चरम लक्ष्य मानकर उसको हासिल करने के लिये लगातार कठिन परिश्रम करता है और आखिर में सफल हो, उस चीज़ को हाथ में लेकर देखता है तो उसे तुच्छ मायाजाल पाता है। ऐसी हालत में हमारा भी दिल

दुःखित हो जाता।

अकाल में जब दल-के-दल लोग भूखमरी के शिकार होते हैं, तब हमें वह मृत्यु प्रसन्नतामय प्रतीत नहीं होती। परन्तु हम अनायास कल्पना कर सकते हैं कि किसी दिल्लगीबाज शैतान के लिये यह बड़े कौतुक का दृश्य है। वह शैतान इन अमर—आत्माएँ, अति जीर्ण कलेवरों की ओर सहास्य दृष्टिपात करके कह सकता है कि तुम्हारे षड्दर्शन, तुम्हारे कालिदास काव्य, तुम्हारे तैंतीस करोड़ देवता आदि सभी कुछ हैं; परन्तु चावल के लिये तुम्हारी अमर आत्मा में और दिग्विजयी मनुष्य एकदम कंठ के पास धुक-धुक कर रहा है।

स्पष्ट बात यह है कि असंगति का तार धीरे-धीरे चढ़ाते जाने से क्रम से वह विस्मय, हास्य और फिर आँसू के रूप में परिणत होता है।

सौन्दर्य में सन्तोष

प्रकाशवती और निर्झरिणी मौजूद न थीं—केवल हम्हीं चार आदमी थे। पवन ने कहा—देखो, उस दिन के उस कौतुक-हास्य के बारे में मुझे एक बात याद पड़ गयी है। अधिकांश कौतुक हमारे मन में कोई-न-कोई विचित्र चित्र खींच देते हैं और उसी से हम लोगों को हँसी आती है। लेकिन जो स्वभाव से ही चित्रकला से नफ़रत करते हैं—जिनकी

बुद्धि अबस्ट्रैक्ट (अनाविष्ट) विषयों में ही भ्रमण करती है, कौतुक वैसे लोगों को विचलित नहीं कर सकता।

पृथ्वीराज ने कहा—पहले तो तुम्हारा विचार ही समझ में न आया; दूसरे अबस्ट्रैक्ट शब्द अङ्गरेज़ी है।

पवन ने कहा—पहले अपराध का प्रतिवाद करने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु दूसरे अपराध से बचने का कोई उपाय नहीं देखता। इसलिये बुद्धिमानों को इसके लिये मुझे माफ करना होगा। मैं कहता था कि जो लोग द्रव्य सम्पूर्ण वहिष्कारक गुण को ही बिना चेष्टा के ग्रहण कर लेते हैं, वे स्वभावतः हास्यरस के रसिक नहीं होते।

पृथ्वीराज ने सिर हिलाकर कहा—नहीं, अभी साफ नहीं हुआ।

पवन ने कहा—एक मिशाल पेश करता हूँ। पहली बात तो यह है कि हमारे साहित्य में किसी सुन्दरी का वर्णन करते समय चित्रकार कोई विशेष चित्र खींचने की ओर लक्ष्य नहीं करता। सुमेरु, दाण्डिम्ब, कदम्ब, निम्ब इत्यादि कई एक चुने हुए शब्दों को लेकर उन्हें एक लच्छेदार भाषा में शृङ्खलित कर देता है और इन्हीं शब्दों को वह प्रत्येक सुन्दरी के गुणों की प्रशंसा करते समय व्यवहार में लाता है। हम किसी मूर्ति का अविकल प्रतिरूप नहीं खींचते और खींचने की चेष्टा भी नही करते। इसीलिये हम लोग कौतुक के एक प्रधान अङ्ग से वंचित रह जाते हैं। हमारे प्राचीन काव्यों में प्रशंसा के उद्देश्य से सुन्दरी की धीमी गति की तुलना गजेन्द्रगमन के साथ की गयी है। यह तुलना दूसरे देशों के साहित्य में अवश्य ही हास्यप्रद समझी जायगी। लेकिन इस तरह की एक विचित्र तुलना हमारे देश में क्यों प्रकट हुई और इसका प्रचार ही इतना क्यों बढ़ गया? इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे देश के लोग द्रव्य से उसके गुण को सहज ही अलग करले

सहते हैं। इच्छा के अनुसार हाथी में से हाथी के सभी गुणों को लुप्त कर केवल उसकी मन्दगति को ही बाहर निकालते हैं। इसी से जब षोड़षी युवती के प्रति गजेन्द्रगमन का प्रयोग करते हैं, तब बृहदाकार जानवर को एक बारगी देख नहीं पाते। जब किसी सुन्दर चीज़ का वर्णन करना कवि का उद्देश्य होता है, तब सुन्दर उपमा को ढूंढ़ निकालने की उसे जरूरत होती है। सिर्फ उपमा के उपमेय अंशों की नहीं, अन्य अंशों का भी मनमें उदय हो जाना स्वाभाविक है। इसीलिये हाथी के सूँढ़ के साथ स्त्रियों के हाथ-पैर की तुलना करना कम दुस्साहस का काम नहीं है। लेकिन हमारे देश के पाठक इस तुलना को देखकर न हँसते हैं और न विरक्त होते हैं। इसका कारण यह है कि हाथी के सूँढ़ की केवल गोलाई को लेकर और सब गुणों को छोड़ दिया गया है। यह अद्‌भुत शक्ति हममें है। गृद्धिनी के साथ कान का क्या मुकाबिला है। उसे समझने की मुझमें कल्पनाशक्ति नहीं है। सुन्दर मुख को दोनों ओर दो गृद्धिनी लटक रही है, ऐसी धारणा मैं नहीं कर सकता, क्योंकि मेरी कल्पनाशक्ति इतनी जड़ नहीं हुई है। हो सकता है कि अंग्रेजी पढ़ने के कारण हमारी हँसने की शक्ति में ऐसा परिवर्तन हुआ हो।

पृथ्वीराज ने कहा—हमारे देश में काव्यों में स्त्रियों की बनावट का वर्णन करते समय जहाँ कहीं ऊँचाई और गोलाई का व्यक्त करने की जरूरत हुई है, वहीं कवियों ने अनायास गंभीरतापूर्वक पहाड़ और पृथ्वी की अवतारणा की है। इसका एक कारण यह है कि एवस्ट्रेक्ट भाव के देश में परिमाण विचार की जरूरत नहीं है। बैल की पीठ का डौल भी ऊँचा होता है। और कंचन जंघा की चोटी भी ऊँची होती है, इसलिये अगर सिर्फ एब्सट्रेक्ट ऊँचाई को ही ग्रहण करें तो बैल की पीठ के साथ कंचन जंघा की समता की जा सकती है। लेकिन जो

बदनसीब कंचन जंघा की उपमा सुनकर कल्पना पट पर हिमालय की चोटी को अंकित कर लेता है, पहाड़ की केवल ऊँचाई को ही देखकर और सभी हिस्से छिपा नहीं सकता, उसे लोहे का चना चबाना पड़ता है। भाई पवन, तुम्हारी आज की बात सही मालूम पड़ती है। मैं इसका खण्डन नहीं कर सकती, इसलिये दु:खी हूँ।

गगन ने कहा—मुझे इसके विरोध में कुछ कहना है। पवन के मत को कुछ संशोधितरूप में व्यक्त करना उचित समझता हूँ। वास्तविकता यह है कि हम लोग अन्तर्जगत् में विहार करने वाले हैं। बाहरी जगत हमारे लिये शक्तिशाली नहीं है। मन में हम जिस बात को गढ़ लेते हैं, बाहरी जगत उसका खण्डन कर उसे तोड़ नहीं सकता। उसका खण्डन ग्राह्य भी नहीं होता। जैसे पुच्छलतारा की छोटी-सी पूंछ अगर किसी ग्रह के रास्ते में आ जाय तो उससे पूंछ की हानि भले ही हो सकती है, लेकिन ग्रह को क्षति नहीं पहुँचती। वह निधड़क चला जाता है। वैसे ही वहिर्जगत के साथ हमारे अन्तर्जगत का कभी सम्पूर्ण सघात नहीं होता। अगर होता भी है तो वहिर्जगत हार मानकर पीछे हट जाता है। जिनके पास हाथी के अस्तित्व में किसी तरह का भ्रम नहीं होता, वे लोग गजेन्द्र-गमन की उपमा में गजेन्द्र को बिना जाने-सुने बाद देकर केवल गमन को ही नहीं ले सकते। गजेन्द्र अपना लम्बा-चौड़ा शरीर फैलाकर अटल भाव से काव्य का राह रोके खड़ा रहता है। लेकिन हमारे समीप गज और गजेन्द्र कुछ भी नहीं हैं। वह हमारे समीप इतना प्रत्यक्ष स्पष्ट नहीं है कि केवल उसके गमन को ही लेने के लिये उसके सम्पूर्ण शरीर को गाड़ देना होगा।

पृथ्वीराज ने कहा—इसलिये क्या सुमेरू, क्या गजेन्द्र और क्या मेदनी कोई भी हमें नहीं हटा सकता। काव्य ही क्यों ज्ञान-राज्य में

भी हम लोग वहिर्जगत को कुछ समझते ही नहीं। एक सीधा मिसाल याद पड़ता है। हम लोगों के संगीत के सातों स्वर जुदा-जुदा पशु पक्षियों के कण्ठस्वर से लिये गये हैं। भारत के संगीत शास्त्र में यह प्रवाद चिरकाल से चला आता है। आज तक हमारे उस्ताद के मन में इस बारे में शक भी नहीं हुआ। लेकिन वहिर्जगत रातोंदिन उसका प्रतिवाद कर रहा है। स्वरमाला का प्रथम सुर गधे के सुर से चुराया गया है। ऐसी विचित्र कल्पना किसी बुद्धिमान के मस्तिष्क में क्योंकर समाई, इसका कारण समझना हमारी बुद्धि के परे है।

गगन ने कहा—यूनानियों के लिये वहिर्जगत वाष्प और मरीचिका की तरह नहीं था। वह साफ चमकता हुआ था। इसीलिये उन्हें कठिनाई का सामना करना पड़ता था। उन्हें अपने देवी-देवताओं की मूर्ति होशियारी से बनानी पड़ी थी। अगर वे ऐसा न करते तो सांसारिक सृष्टि के साथ उनके मन की सृष्टि एक लोमहर्षक संघर्ष होता और उसका फल यह होता कि मूर्ति-पूजन में वह भक्ति और आनन्द न रह जाता। हमें इसका भय नहीं है। हम अपने देवता की चाहे जैसी भी मूर्ति बनावें, हमारी कल्पना के साथ उसका किसी भी प्रकार का मतभेद नहीं होता। चतुर्भुज, मूषि-वाक, एकदन्ता लम्बोदर गजानन आदि आदि मूर्तियाँ हमारे लिये हँसी का विषय नहीं हैं। इसका सबब यह है कि उसी मूर्ति को हम अपने मन की चिन्ता के भीतर भी देखते हैं। वहिर्जगत के साथ और उसके चारों तरफ के स्थूल सत्य के साथ हम उसकी तुलना नहीं करते; क्यों कि वहिर्जगत हमारे समीप उतना कठिन और मजबूत नहीं। जितनी प्रबल वह काल्पनिक मूर्ति-जिसको उपलक्ष्य बनाकर हम अपने मन के भाव और भक्ति को जागृत रख सकते हैं।

पवन ने कहा—जिसको उपलक्ष्य मानकर हमप्रेम या साधना करते

है, उस उपलक्ष्य को सम्पूर्ण, सौन्दर्य अथवा स्वाभाविकता से अलंकृत करने की हमें आवश्यकता नहीं पड़ती। सम्मुख एक भद्दी और विकृत मूर्ति को देखकर भी हम उसकी सुन्दरता को महसूस कर सकते हैं।

मनुष्य का गाढ़ा नीला रंग हमें स्वभावतः सुन्दर प्रतीत नहीं हो सकता है, लेकिन जब हम कृष्ण भगवान की मूर्ति गाढ़े नीले रंग में देखते हैं तब उसे हम सुन्दर ही समझते हैं। उसकी खूबसूरती महसूस करने में चेष्टा ही नहीं करनी पड़ती। बाहरी दुनिया के आदर्श को जो लोग अपनी इच्छा के अनुसार छिपा नहीं सकते। वे लोग अगर अपने मन के सौन्दर्य भाव को किसी मूर्ति के रूप में बनाने लगें तो वे किसी तरह उसमें अस्वाभाविकता का समावेश नहीं कर सकते। यूनानियों की निगाह में यह नीला रंग बहुत ही खटकता है।

गगन ने कहा—हमारी अपने देश की प्रकृति की यह विशेषता ऊँचे दर्जे की कला-विद्या के लिये बाधक भले ही हो, लेकिन उससे अनेकों सुविधायें भी मिलती हैं। प्रेम, भक्ति, स्नेह, यहाँतक कि सौन्दर्य भोग के लिये भी हमें बाहरी दुनिया की गुलामी नहीं करनी पड़ती; सुविधा और सुअवसर की प्रतीक्षा में बैठना नहीं पड़ता। भारतीय स्त्री अपने पति को देव-तुल्य समझती है और उसी विधि से पूजती है, लेकिन उसमें भक्ति भाव को पैदा करने के लिये पति में देवता के गुणों का समावेश जरूरी नहीं है। यहाँ तक कि पति अगर मूर्ख हो, तो भी उसकी पूजा निर्विघ्न होती है। स्त्री अपने पति को धिक्कार सकती है, लेकिन उसकी पूजा वेद-भाव से करती है। एक की प्रबलता से दूसरा भाव दब नहीं जाता। क्यों कि हमारी भीतरी दुनिया के साथ बाहरी दुनिया का संघात उतना प्रबल नहीं होता।

पवन ने कहा—केवल पति देवता ही क्यों? हमारे पौराणिक

देवी-देवताओं के बारे में भी हमारे मन में इसी तरह के दो विरोधी भाव मौजूद हैं। वे आपस में एक दूसरे को दूर नहीं हटा सकते। हमारे देवताओं के बारे में जो पौराणिक कहाहियाँ कही जाती हैं, हमारी धर्म-बुद्धि का आदर्श उसका समर्थन नहीं करता यहाँ तक कि हमारे साहित्य और संगीत में देवताओं की निन्दा का उल्लेख कर बहुत परिहास किया गया है। पर चूँकि हम उनका व्यंग और अवहेलना करते हैं, इसलिये भक्ति नहीं करते, ऐसी बात नहीं। गाय को हम जानवर समझते हैं, उनकी सूझ-बूझ पर भी टीका करते हैं। खेत में पड़ने पर लाठी लेकर हाँकते भी हैं और सारघर* में गोबर में खड़ा भी रखते हैं, लेकिन भगवती कहकर पूजा करते समय ये बातें खयाल भी नहीं आतीं।

पृथ्वीराज ने कहा—और एक मज़ेदार बात यह है कि हमलोग हमेशा बेसुरे आदमी की तुलना गधे से करते हैं तथापि कहते हैं कि, गधे से ही संगीत-शास्त्र का पहला अक्षर मिला है। यह कहते समय हम उसे भूल जाते हैं और जब वह कहते हैं तब इसका खयाल छोड़ देते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि हमारे अन्दर यह एक विचित्र शक्ति है। लेकिन इस विशेष शक्ति का सहारा लेकर गगनदेव जिस सुविधा का ज़िक्र करते हैं, मैं उसे नहीं समझता। हम लोगों में काल्पनिक सृष्टि को बढ़ाने की शक्ति है। इसलिये हमारे अन्दर ज्ञानलाभ, अर्थलाभ और सौन्दर्य भोग के बारे में एक उदासीनता सूचक संतोष का भाव पाया जाता है। हम किसी-चीज़ की खास जरूरत महसूस नहीं करते। यूरोप के विद्वान् अपने वैज्ञानिक अनुमानों को बड़ी सख्ती से हजारों बार

* गोशाला।

जाँचते हैं तौभी उनका शक दूर नहीं होता। जब हम अपने मन में कोई खास सुगठित राय खड़ाकर लेते हैं, तब उसकी सुषमा ही हमारे ही हमारे समीप सबसे बड़ा सबूत समझी जाती है। हम उसकी बाहरी दुनिया में परिक्षा करके देखने की आवश्यकता नहीं समझते। ज्ञान-वृत्ति में जो बात घटती है, वही बात हृदय-वृत्ति में भी घटती है। सौन्दर्य-रस का ज़िक्र करना चाहते है, लेकिन इस उद्देश्य से यत्न के साथ मन के आदर्श को बाहरी दुनिया में गढ़कर एकरूप दिखादेने की जरूरत हम नहीं समझते। अच्छा-बुरा कुछ बन जाने से ही हम संतुष्ट हो जाते हैं। अपने देवता को, अपने सौन्दर्य के आदर्श को ठीक सुन्दर बनाने का प्रयत्न नहीं करते। भक्ति-रस का ज़िक्र करना चाहते हैं, लेकिन यथार्थ भक्ति के पात्र को खोज निकालने का प्रयत्न नहीं करते और न इसकी जरूरत ही समझते हैं।

पवन ने कहा—अंग्रेजी शिक्षा के असर के कारण हम लोग इन नियमों को भङ्गकर रहे हैं। बंकिम का कृष्णचरित्र इसका एक मिशाल है। बंकिम ने कृष्ण की पूजा करने और इसका प्रचार करने के पहले उनको स्वच्छ और सुन्दर बनाने की चेष्टा की है। यहाँ तक कि कृष्ण-चरित्र में जितनी बातें अप्राकृतिक हैं, उन सभी को उन्होंने निकाल दिया है। उन्होंने इस बात का समर्थन नहीं किया है कि देवता को दोष नहीं लगता, 'तेजस्वी के लिये सभी दोष माफ हैं। उन्होंने एक नये असंतोष की रचना की है, पूजा करने के पहले उन्होंने देवता की तलाश करने की चेष्टा की है, और जो सामने मिल गया है, उसीको लेकर नतममस्तक को पूजन नहीं करने लगे हैं।

पृथ्वीराज ने कहा—असंतोष के अभाव में ही चिरकाल से हमारे समाज में ये बातें चलीं आ रही हैं। ब्राह्मण को हम आँखमूँद कर देवता

समझते हैं, इसीलिये बिना चेष्टा की वे पूजा पाते हैं और अनायास ही हमलोगों की भी भक्तिवृत्ति चरितार्थ हो जाती है। सुन्दरता अनुभव करने के लिये सुन्दर चीज़ की जरूरत नहीं होती, भक्तिदान करने के लिये भक्तिपात्र की जरूरत नहीं होती। इस तरह अति संतोष की हालत को हम सुविधा नहीं समझते। इससे सिर्फ समाज की श्रीहीनता, दीनता और अवनति को ही सहारा मिलता है। अगर बाहरी दुनिया को उत्तरोत्तर लुप्त करके मानसिक दुनिया को प्रधानता दी जाय तो यह उतनी ही अज्ञानता होगी, जितनी पेड़ की डाल पर बैठकर उसी डाल काटने से होगी।

सज्जनता का आदर्श

निर्झरिणी ने कहा—देखो, घर में धूमधाम है। तुम लोग गगन से कहो, ज़रा भले आदमी की शक्ल में आया करें।

यह सुनकर हम सभी खिलखिला उठे। प्रकाशवती ने आँखें लाल करके कहा—इसमें हँसने की कोई बात नहीं, तुम लोग गगन को समझा देना कि सभ्यसमाज में मजनू की तरह शक्ल बनाकर न आया करें। इन सब बातों में सामाजिक नियम तथा रीति नीति का ध्यान रखना अच्छा होता है।

पवन ने बात बढ़ाने की गरज से पूछा—क्यों, क्या चाहिये?

प्रकाशवती ने कहा—काव्य-राज्य से कवि का शासन जैसा मुश्किल है, कवि जैसे छन्द का कोई ढीलापन, मिलान की कोई भूल और शब्द भी रूढ़ता माफ नहीं कर कसता, वैसे ही हमारे रीति-नीति के सम्बन्ध ने समाज-शासन भी ढीलापन नहीं प्रकट कर सकता। अगर ऐसा न करे तो सारे समाज का छन्द और सौन्दर्य पल भर ही में गिर जायेगा।

पृथ्वीराज ने कहा—समाज को सुन्दर बनोना हम सभी का फर्ज़ है, यह मैं मानता हूँ, लेकिन अन्यमनस्क गगन बेचारा जब इस फर्ज़ को भूलकर पैर बढ़ाये धड़ाधड़ चला आता है, तब वह बुरा नहीं लगता।

प्रकाशवती ने कहा—अगर वह अच्छे कपड़े पहनते तो देखने में और भी भले लगते।

पृथ्वीराज ने कहा—सच कहो तो सही, अच्छे कपड़े पहनने पर गगन क्या सचमुच भले लगते हैं? और फिर हाथी को अगर मोर की तरह पङ्ख हो, तो क्या उसकी खूबसूरती बढ़जाती है? और फिर मोर को हाथी की पूँछ भी तो अच्छी नहीं लगती। वैसे ही अगर गगन को पवन की पोशाक पहना दी जाय तो वह उन्हें अच्छ नहीं लगती और अगर पवन, गगन की पोशाक पहनकर आयें तो उन्हें घर में घुसने भी नहीं दे सकते।

पवन ने कहा—सच बात यह है कि पोशाक और आचार-विचार की हीनता से जब ढीलापन, अज्ञानता और जड़ता प्रकट होती है, तभी वह देखने में बुरी मालूम पड़ती है।

यह सबब है कि हमारा समाज इतना फीका पड़ गया है। बङ्गाली समाज जैसा बदकिस्मत है वैसा ही समाजहीन भी है। अर्थात् उसमें अच्छे समाज की विशेषतायें नहीं हैं। हिन्दुस्तानी "सलाम" शब्द

का अभिवादनसूचक कोई पर्यायवाची शब्द बङ्गला साहित्य में नहीं है। इसका मुख्य कारण बङ्गाली समाज का व्यवहारिक सम्बन्ध सीमित होना है। मामूली दुनिया के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसीलिये अपरिचित समाज के साथ मिलते समय शिष्टाचार को भूल जाता है। एक हिन्दुस्तानी सभ्यता के लिहाज़ से चाहे अंग्रेज हो चाहे चीना, सभी को सलाम कर सकता है, बङ्गाली वहाँ नमस्कार भी नहीं कर सकता और सलाम भी नहीं कर सकता। वह वहाँ बिल्कुल अनमानुष बन जाता। बङ्गालिनें काफी कपड़े से अच्छादित नहीं होतीं, वे हमेशा असम्वृत रहती हैं। इस कारण ससुर-भसुर इत्यादि घर के परिचित संबन्धियों के समीप उन्हें यथेष्ट शर्म होती है, लेकिन साधारण भद्र समाज के उपयुक्त लज्जा प्रकट करने में वे बिल्कुल उदासीन रहती हैं। यह ढीलापन सामाजिक दकियानूसी का फल है। काफी कपड़े व्यवहार करने और न करने के सम्बन्ध में बङ्गाली पुरुषों में अधिक उदासीनता रहती है। हमेशा अधिक समय अपने बाल-बच्चों और आत्मीयजनों मे ही व्यतीत करने के कारण उदासीनता का यह भाव उनके हृदय में जड़ जमा लेता है। इसीलिये बङ्गालियों के कपड़े लत्ते और रहन-सहन की अशिष्टता के कारण उनमें एक अपरिचित सुस्ती, ढीलापन, स्वेच्छाचार और आत्मसम्मान की कमी दिखायी पड़ती है। इसलिये यह बङ्गालियों की विशुद्ध जघन्यता है, इस में शक नहीं।

मैंने कहा—लेकिन इसलिये मैं शर्मिन्दा नहीं हूँ। किसी-किसी रोग में ऐसा होता है कि जो हम खाते हैं, वही चीनी की तरह मीठा हो जाता है। वैसे हमारे सभी भले-बुरे आचरण विचित्र मानसिक खराबी के कारण केवल अतिमधुर अलंकार के रूप में परिणत होते हैं। हम कहा करते हैं कि हमारी तो आध्यात्मिक सभ्यता है। हमारी सभ्यता

का परमलक्ष्य—"सदा मस्त रहो" का नहीं है। इसीलिये सभी जड़ सम्बन्धी के बारे में हमारी इनती उदासीनता है।

पवन ने कहा—किसी ऊँचे विषय को हमे लक्ष्य रखने के कारण बहुत लोग मामूली बातों को बिलकुल भूल जाते हैं। अगर भूलते नहीं तो उदासीनता तो जरूर दिखलाते हैं, ऐसे लोगों की निन्दा कहने की कोई हिम्मत नहीं करता। सभी सभ्य समाजों में हो इस तरह का सम्प्रदाय समाज के सबसे ऊँचे आसन पर विराजता है। पुराने ज़माने में अध्ययनशील ब्राह्मण भी इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। किसी को भी ऐसी आशा न थी कि वे लोग क्षत्रिय और वैश्यों की भाँति सज-धज से उदासीन रहेंगे। यूरोप में इस सम्प्रदा के लोग पहले भी थे और अब भी हैं।

मध्ययुगीन आचार्यों की बात अगर छोड़ भी दें तो भी आधुनिक युग के यूरोप में भी न्यूटन जैसे बड़े-बड़े लोग नवीन फैशन के बाबू बनकर किसी दावत में शामिल होने जाँय और सामाजिक रीति-नीति का ज़रा भी ध्यान न रखें तो भी उन्हें हँसने वाला कोई नहीं है। इसके लिये उन्हें कोई अनादर करने वाला नहीं है। सभी ज़माने में और सभी देशों में कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं जो समाज के अन्दर रहकर भी समाज से विरक्त रहते हैं; कोई रीति-रस्म नहीं मानते। अगर वे लोग ऐसा न करें तो उनका काम ही नहीं चल सकता और सभाग भी उन्हें इसके लिये विरक्त नहीं करता। लेकिन अचरज की बात यह है कि बंगाल में सिर्फ़ थोड़े से ऊँचे दर्जे के महापुरुष ही नहीं अपितु सारा देश सभी तरह के स्वभाव-वैचित्रों को भूलकर दूसरे समाजों की कल्पना के अतीत आध्यात्मिकता को ऊँची चोटी पर सुगमतापूर्वक आसीन हैं। हम लोग ढीली पोशाक और ढीले

अदब को ही लेकर बड़े आराम से ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं। हम चाहे जैसे रहें, किसी को टीकाटिप्पड़ी करने की जरूरत. नहीं—अधिकार भी नहीं, क्योंकि हममें से सभी तरह के लोग मैली चादर लेकर निर्गुण ब्रह्म को पाने के लिये साधना कर रहे हैं।

इसी समय गगन अपनी मोटी लाठी लेकर उपस्थित हुए। उनकी आजकी पोशाक तो और भी अद्भुत थी। इसका कारण यह था कि उस घर में आज एक समारोह था, इसलिये उन्होंने अपने रोज़ के पहनावे के ऊपर चपकन की तरह का एक शाल का बेढंगा कुरता पहन लिया था। चपकन के भीतर से बेनाप कटे हुए कपड़े दिखायी पड़ते थे। यह देख हम सभी ठहाका भर उठे और प्रकाशवती तथा निर्झरिणी के मन में बड़ी नफ़रत पैदा हो गयी।

गगन ने कहा—तुम लोगों में किस विषय पर बहस-मुबाहिसा हो रहा है?

पवन ने हमारी आलोचना का कुछ अंश गगन को सुनाकर कहा—मेरे सम्पूर्ण देश ने ही वैरागी का वेष धारण किया है।

गगन ने कहा—वैराग्य के समान कोई दूसरा ऐसा बड़ा काम हो ही नहीं सकता जो कि सारे देश का आश्रयस्थल बन जाय। प्रकाश के साथ जैसे छाया रहती है, वैसे ही कर्म के साथ वैराग्य का लगातार सम्बन्ध रहता है। वैराग्य के ऊपर जिसका जितना ही अधिकार होता है, वह उतना ही अधिक काम कर सकता है।

पृथ्वीराज ने कहा—इसीलिये जब सारी दुनिया आराम की आशा से लाखों उपाय कर रही थी, उस समय वैरागी डारविन ने दुनिया के तमाम काम-काज छोड़कर केवल इसी बात को साबित करने में अपनी तमाम दिमागी ताकत लगादी और यह साबित किया कि—मनुष्य का

आदि पुरुष बन्दर था। इसके लिये डारविन को महान त्याग करना पड़ा है।

गगन ने कहा—अगर गेरीबाल्डी असंख्य आसक्तियों से अपने को आजाद न कर सकते, तो वह इटली को भी आजाद न कर सकते थे। कर्मनिष्ठ जातियाँ ही वास्तव में वैरागी हैं। जो लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिये जीवन और जीवन के सभी सुखों को तृण की तरह छोड़कर हिमाच्छादित हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचना चाहते हैं और बार-बार व्यर्थप्रयास होकर भी पस्त हिम्मत नहीं होते, वे ही वास्तव में वैरागी हैं। जो लोग देश की पुकार पर अपना सर्वस्व त्याग, फूलों का सेज छोड़कर काँटो की सेज पर सोने के लिये तैयार हो जाते हैं—यहाँ तक कि मौत से भी नहीं घबड़ाते, वे ही यथार्थ वैरागी हैं। और हम लोगों का कर्महीन निर्जीव वैराग्य केवल अधः पतित जाति की बेहोशी हालत के सिवा और कुछ नहीं। वह तो जड़ता है, उसका गर्व करना मूर्खता है।

पृथ्वीराज ने कहा—अपनी इस बेहोशी हालत को हम लोग कहते हैं कि आध्यात्मिक दशा की प्राप्ति हो गयी है और ऐसा ही अनुभव कर हम लोग भक्ति से विह्वल हो जाते हैं। इसी धारणा से हम सारे कर्म से च्युत हो जाते हैं।

गगन ने कहा—कर्मी को कठिन नियम मानकर काम करना होता है, इसलिये अपने कर्म का नियम पालन करते समय उसे अनेकों छोटे-छोटे कर्मों की अपेक्षा करनी पड़ती है। ऐसा करना उसके लिये सभ्य है। जो मनुष्य जल्दी-जल्दी दफ्तर को दौड़ रहा है, उससे हम यह आशा नहीं कर सकते कि रास्ते में सभी के साथ शिष्टतापूर्वक व्यवहार करता हुआ, सबको प्रत्यभिवादन करता हुआ जायगा। अंग्रेज माली

जब शरीर से कुर्ता निकाल, हाथ की आस्तीन समेटकर बागीचे में काम करता है, उस समय अगर उसके मालिक की स्त्री उसे देखकर लज्जित होवे तो इसमें किसको दोष है? लेकिन हम लोग जब बिना काम-काज के सारे दिन रास्ता के एक किनारे अपने घर के दरवाजे पर तोंद खोले हुये घुटने के ऊपर तक धोती समेटकर बैठे-बैठे शर्म छोड़कर हुक्के का दम लगाते हैं, तब हम दुनिया के सामने किस महान वैराग्य और किस महान आध्यात्मिकता की दुहाई देकर अपनी इस बर्बता और सभ्यता पर पर्दा डाल सकते हैं? जिस वैराग्य के साथ कोई महान, सचेष्ट उद्योग नहीं मिला हुआ है, वह असभ्यता के सिवा क्या हो सकता है?

गगन की ये बातें सुनकर निर्झरिणी को बड़ा अचरज हुआ। कुछ क्षण चुप रहकर बोली—जब तक हमारा सभ्य समाज हमेशा यह खयाल में न रखेगा कि शिष्ठतापूर्वक व्यवहार करना—भद्रता से रहना हमारा कर्तव्य है और जब तक कि इस सिद्धान्त का पूर्णरूप से पालन न करेगा, तब तक वह अपने आत्मसम्मान का आदर नहीं कर सकता। हम लोगों ने अपना मूल्य स्वय घटा दिया है।

पृथ्वीराज ने कहा—बस, मूल्य को बढ़ाने के लिये वेतनवृद्धि भी करनी होगी। लेकिन यह तो मालिकों के हाथ की बात है।

प्रकाशवती ने कहा—वेतनवृद्धि की आवश्यकता नहीं है। हमारे देश में पैसेवाले भी मैले-कुचैले कपड़े पहने रहते हैं। वे भी अपनी पोशाक की ओर ध्यान नहीं देते। इसका कारण उनमें चेतनवृद्धि का न होना है, अर्थाभाव नहीं। जिसके पास लक्ष्मी है, वह समझता है कि घोड़े-गाड़ी के बिना उसके ऐश्वर्य का सबूत ही नहीं मिल सकता। लेकिन अगर हम उसके अन्तःपुर में घुसें तो देखेंगे

कि उसकी हवेली गोशाला से भी गयी-गुजरी है। हम अनावश्यक चीजों की ओर तो अधिक ध्यान देते हैं, पर आवश्यक चीजों की ओर से आँख मीच लेते हैं। हम लोगो की स्त्रियाँ इस बात की कल्पना भी नहीं करतीं कि सौन्दर्यवृद्धि के लिये जितने अलंकार की आवश्यकता है, उसकी अपेक्षा अधिक आभूषण पहनकर धनगर्व प्रकट करना इतरजनोचित अभद्रता है। इस अहंकार की तृप्ति के लिए उनका धनागार कुबेर को भी मात करता है, लेकिन आँगन का कूड़ा-करकट दूर करने के लिये उनमें कोई तत्परता नहीं देखी जाती। रुपये की कमी नहीं है, वस्तुतः हमारे देश में यथार्थ भद्रता आदर्श अभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ है।

निर्झरिणी ने कहा—इसका मुख्य कारण यह है कि हम लोग काहिल हैं। रुपये रखने से ही बड़ापन दिखलाया जा सकता है और रुपये के अभाव में भी नवाबी-चाल चली जा सकती है, लेकिन भद्र होने के लिये आलस्य को छोड़ना लाज़िमी है, हमेशा अपने को उन्नत सामाजिक आदर्श के उपयुक्त बनाये रखने की उसे चेष्टा करनी पड़ती है और विपद मंजूर करके आत्मविसर्जन करना पड़ता है।

पृथ्वीराज ने कहा—लेकिन मेरी समझ में यह आता है कि हम लोगों का स्वभाव बच्चों जैसा है, और इसलिये बड़े सरल हैं। धूल, कीचड़ और नग्नता आदि नियमहीनता में हम तनिक भी शर्म महसूस नहीं करते। हमारे सभी आचरण अकृत्रिम और आध्यात्मिक है।

अपूर्व रामायण

घर में एक समारोह था। इसीलिये सन्ध्या को समीप ही मंच के ऊपर से बरवा राग में शहनाई बज रही थी। गगन बहुत देरतक आँखे बन्द किये बैठे थे। एकाएक चारों ओर देखकर कहने लगे:—

हमारे देश की इन सभी रागिनियों में एक परिव्याप्त मृत्यु-शोक का भाव लुप्त रहता है। सुर मानो रुदनकर कहता है कि इस संसार में कुछ भी टिकाऊ नहीं है। सभी जीवधारी इस बात से परिचित हैं कि संसार की सभी चीजें अस्थायी हैं। यह एक जानी हुई बात है। अतः इसकी धारण कर कोई प्रसन्न नहीं होता। तथापि इस वंशी के मुख से इसी बात को सुनकर हम इस पर मोहित क्यों हो जाते हैं? इसका सबब यह है कि वंशी दुनिया के सबसे बड़े अप्रिय और कठोर सत्य की रागिणी की तरह सरस बनाकर कहती है—प्रतीत होता है, मौत इस रागिणी की तरह करुणवाली है, लेकिन साथ-ही-साथ वह उसी की तरह सरस और सुन्दर भी है। दुनिया की छाती पर जो सबसे बड़ा भय मौत का रखा हुआ है, उसको एकमंत्र के असर से यह रागिणी हल्का कर देती है। यही सत्य अगर किसी के हृदय से उच्छवासित होता तो उससे वेदना की जो चीख निकल पड़ती, वंशी ने उसी को सारी दुनिया के मुख से ध्वनित करके एक अगाध करुणापूर्ण और सान्त्वनापूर्ण रागिणी की सृष्टि की है।

प्रकाशपती और निर्झरिणी अतिथियों का सत्कार पूराकर अभी आकर बैठी थीं कि इतने में उन्होंने आज के समारोह के दिन गगन

उनके क्रोध को न समझकर निधड़क बोलते गये, बाजा बहुत मधुर लगता था। हम लोगों ने उस वाद-विवाद को अधिक समय तक जारी नहीं रखा।

गगन ने कहा—आज की वंशी सुनकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सभी कविताओं में एक-न-एक रस रहता है। अलंकार शास्त्र में इन रसों का जुदा-जुदा नाम है। मेरी समझ में अगर संसार-रचना को काव्य-दृष्टि से देखा जाय, तो कहना पड़ेगा कि मौत ही उसका प्रधान रस है।

जिधर मृत्यु है उधर संसार की असीमता है। अगर मौत इस अनंत को अपने चिरप्रवाह में लगातार बहाती न रहती तो दुनिया के लिये इस भारी बोझ का सह लेना कभी-भी मुमकिन न होता।

पवन ने कहा—अगर मौत न होती, तो जीवन का कोई मूल्य ही न होता। जिसको सारी दुनिया नफ़रत से देखती है, वह भी मौत की बदौलत अपनी ज़िन्दगी को गौरवमय समझता है।

पृथ्वीराज ने कहा—मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं। मेरी समझ में अगर मौत नहीं होती तो किसी चीज़ के बाद पूर्ण विराम नहीं देखा जा सकता था। मेरी राय में यही सबसे अधिक ग़ौर करने की बात है। उस समय अगर गगन अद्वैत-तत्व के बारे में जिक्र कर देते तो कोई दोनों हाथ जोड़कर यह बात कहने की हिम्मत नहीं कर सकता था कि जनाब भाई साहब अभी समय नहीं है, इस बात को मत छेड़िये।

गगन इन बातों पर खास खयाल न कर चिन्ता-सागर में डूबकी लगाते हुये बोले—दुनिया में सिर्फ़ मौत ही सदा रहने वाली है, इसलिये हमलोगों ने अपनी सारी आशाओं और वासनाओं को उसी

मौत के भीतर प्रतिष्ठित किया है। हमारा स्वर्ग-नर्क सबकुछ उसी मौत के भीतर है। हमारी अमरता और असीमता झूठी-साबित की जा रही है, लेकिन दुनिया की सरहद पर, जहाँ मौत का राज है, सभी चीजों का अवसान नज़र आता है। वहीं हमारी प्रियतम वासनाओं और सुन्दरतम कल्पनाओं का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता वहीं वे अनायास करतलगत होती हैं। हमारे शंकर भगवान श्मशान पर वास करते हैं, हमारे सर्वोच्च मंगल कादर्श मौत के मुख में है।

मुलतानी बरवा ख़त्म कर शाम को शहनाई में पुरबी रागिनी बजने लगी।

पवन ने कहा—हम लोगों ने जिन आकांक्षाओं को मौत के उस पार हमेशा के लिये निकाल रखा है, यह वंशी की तान उन्हीं को फिर दुनिया में प्रवर्तित करती है। बीते ज़माने के विरह विच्छेद् के आँसुओं को पोंछ देती है। हृदय में फिर नयी आशाओं का संचार हो जाता है। जिन्दगी में ताज़गी आ जाती है। मौत के उस पार से मनुष्य के हृदय समस्त चिरस्थायी पदार्थ ज़िन्दगी के अन्दर लौट आते हैं। और कहते हैं कि धरती की स्वर्ग, वास्तव को सुन्दर और जीवन को अमर बनाना हमारा उद्देश्य होगा

हम अपने सम्पूर्ण प्रेम को इस धरती से बटोर कर मौत के उस पार न भेज देंगे, यही इस धरती पर ही रखेंगे। इसी बात को लेकर तर्कर का तूफ़ान चल रहा है।

पृथ्वीराज ने कहा—इस प्रसंग पर मैं एक अपूर्व रामायण की बात कहकर सभा विसर्जित कर देना चाहता हूँ।

रामचन्द्र सीता को छुड़ाकर अयोध्यापुरी लाते हैं और आनन्द से दिन व्यतीत करते हैं। इतने में धर्मशास्त्रों ने मिलकर प्रेम के नाम

कलंक लगाया कि "इन्होंने अनित्य के साथ निवास किया है।" इनको छोड़ना होगा। सचमुच अनित्य के घर बन्द रहकर इस राजकुमारी को कलंक नहीं लगेगा—इसका क्या सबूत है? एक अग्नि परीक्षा से सबूत हासिल किया जा सकता है। उसका तो व्यवहार किया जा चुका है। उससे तो इसमें और भी चमक आ गयी। तौभी शास्त्रों के कारण आखिर में सीता को मृत्युतमसा के तट पर निर्वासित कर दिया गया। इसके बाद इस अनाथिनी को लव और कुश काव्य और ललितकला नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। वही दोनों कुमार अपने उस्ताद से रागिणी सीखकर राजसभा में अपनी परित्यक्त माता का यशोगान करने के लिये आये हैं। इन नये गायकों का गान सुनकर बिरही राजा का चित्र चंचल और आखें सजल हो गयी हैं। अभी उत्तरकाण्ड पूरा नहीं हुआ है। अभी देखना है कि त्याग प्रचारक वैराग्य धर्म की जय होती है या प्रेममङ्गल गायक दोनों अमर बच्चों की।

वैज्ञानिक कौतूहल

विज्ञान की उत्पत्ति और चरमविन्दु के बारे में गगन और पृथ्वीराज में तर्क का तूफान चल रहा था। इसी सिलसिले में गगन ने कहा—अगर्चे हमारी कौतूहल की सरहद से ही विज्ञान की उत्पत्ति हुई है तथापि मुझे पूर्ण भरोसा है कि हमारा कौतूहल विज्ञान को तलाशने के लिये नहीं

निकला था। उसकी आकांक्षा तो बिल्कुल अवैज्ञानिक है। वह ढूँढ़ता तो है स्वर्णमणि और निकल पड़ता है पुराने जीव का अँगूठा। वह चाहता है अलाउद्दीन का अचरज-भरा प्रदीप और पाता है दियसलाई का बक्स। आलकिमिट ❀ को प्राप्त करना उसका उद्देश्य था, निकल पड़ी केमिस्ट्री। आस्ट्रोलोजी के लिये वह आसमान छान डालता है, पाता है, नर्मन लाकइयो की ऐस्ट्रोनामी। वह नियम नहीं तलाशता, वह कार्यकारण शृंखला की नूतन अँगुलियाँ नहीं गिनना चाहता, वह ढूँढ़ता है नियम का विच्छेद। वह एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाना चाहता है, जहाँ कार्यकारण का अनन्त पुनरुक्ति न हो। वह चाहता है, अभूतपूर्व नूतनता ; परन्तु बुड्ढा विज्ञान आकर उसकी नूतनता को जर्जर बना देता है।

जो नियम इस धूलिकण में है, वही नियम इस अनन्त आसमान और अनन्त काल में काम कर रहा है। इसी इज़ाद के सिलसिले में हम आनन्द और अचरज प्रकट करते हैं। किन्तु ऐसा प्रकट करना मनुष्य का स्वाभाविक आवेश नहीं है। उसने अनन्त आसमान पर जब अनुसन्धान-दूत भेजा था, तब उसे पूर्ण आशा हुई थी कि उस ज्योतिर्मय, अन्धकारमय घर में वह एक ऐसी जगह पायेगा जहाँ धूलिकण का नियम न होगा, जहाँ एक अपूर्व अनियम का समारोह होता होगा ; लेकिन अब देखता है कि ये चाँद, सूरज, ग्रह, नक्षत्र और सप्तर्षिमण्डल आदि भी हमारे धूलिकणों की बड़ी भाई-बहिनें हैं। इस नवीन तथ्य को लेकर हम जो उत्साह प्रकट करते हैं, वह तो अब नया बनावटी अभ्यास हो गया है। यह हमारी आदिम प्रकृति के भीतर नहीं है।

❀ विज्ञान शास्त्र का आदि तत्व।

पवन ने कहा—यह बिल्कुल झूठ नहीं। स्पर्शमणि और अलाउद्दीन के प्रदीप की ओर प्रकृति में वास करने वाले मनुष्य मात्र ही का एक निगूढ़ आकर्षण है। बचपन में एक कहानी पढ़ी थी कि कोई किसान दुनिया से जाते समय अपने लड़कों को बुलाकर यह कह गया कि अमुक खेत में गुप्त धन गाड़े जाता हूँ। लड़के तलाश करने पर भी यह गुप्तधन न पा सके, परन्तु खेत की खुदाई के कारण उसमें बहुत अन्न पैदा हुआ। उनका सारा कष्ट दूर हो गया। बालक स्वभाव के सभी लोग इस गल्प को पढ़कर दुःखी होते हैं। खेती से तो सारी दुनिया अन्न पैदा करती है, लेकिन गुप्त धन गुप्त है, इसलिये कोई उसे नहीं पाता। यह विश्वस्थायी नियम का एक व्यतिक्रम और व्यभिचार है। इसीलिए मनुष्य स्वभावतः उसके लिये इतना इच्छुक रहता है। कहानी की पुस्तक चाहे कुछ भी कहे, पर किसान के लड़के अपने पिता के प्रति कभी कृतज्ञ नहीं हुए होंगे। वैज्ञानिक नियम के प्रति मनुष्य कितनी अवज्ञा प्रकट करता है, गिनाने की जरूरत नहीं।

मैंने कहा—इसका सबब यह है कि नियम अनन्तकाल और अनन्त देश में फैला रहने पर भी सीमाबद्ध है। वह अपनी हद से जौ भर भी इधर-उधर नहीं हो सकता। शास्त्रसंगत चिकित्सा से हम अधिक भी आशा नहीं करते। लेकिन 'भाग्य' नामक रहस्यमय चीज़ की अभी ठीक हद नहीं बँधी है। इसीलिये वह हमारी आशा और कल्पना को कहीं कड़ा आघात नहीं पहुँचाता।

गगन ने कहा—लेकिन वह भक्ति यथार्थ भक्ति नहीं है। वह तो काम निकालने की भक्ति है। जब बिल्कुल तय हो जाता है कि दुनिया का काम अपरिवर्तनीय नियम से बँधा हुआ है, तब विवश होकर प्राण के डर से उसके सामने नत-मस्तक होना पड़ता है। तब

विज्ञान के बाहर अनिश्चय के हाथ में अपने अपको सौंपने का साहस नहीं होता। तब बिजली, माग्नेटिज्म, हिप्टोनिज्म इत्यादि विज्ञान जाल को देखकर 'यंत्र' और धागा बाँधने की लालसा को रोकना पड़ता है। लाग इस नियम के बनिस्बत अनियम को ही बहुत पसन्द करते हैं। यही कारण है कि हम अपने अन्दर एक जगह नियम का विच्छेद रखते हैं। हमारा मन नियमों की परिधि के बाहर है, उस पर किसी का अंकुस नहीं है। कम-से-कम हमें तो यही अनुभव होता है। अपनी इस स्वाधीनता को बाहरी प्रकृति में उपलब्ध करके हम बहुत प्रमुदित होते हैं। इच्छा से पाया हुआ दान हमें बहुत भाता है। संयोग-रहित होने पर वह सेवा प्रीतिकर नहीं होती है। इसीलिये जब हम यह जानते हैं कि इन्द्रभगवान हमारे लिये जल बरसाते हैं, मरुत हवा पहुँचाते हैं, अग्नि हमें प्रकाश देती है तब उस ज्ञान की परिधि में हमें एक आन्तरिक तुष्टि होती थी। अब हमें मालूम है कि वर्षा, धूप और वायु में इच्छा-अनिच्छा कुछ भी नहीं है। वे प्रिय-अप्रिय, योग्य-अयोग्य का विचार न करके निर्विकार भाव से नियमानुसार काम करते जा रहे हैं। आकाश में अगर भाप इकट्ठा होकर ठंढी हवा के संयोग से जल के कण में परिणत होंगी, तभी साधुओं के पवित्र ललाट पर वर्षा होगी और वे शीतलता पहुँचायेगी। विज्ञान की आलोचना करते-करते क्रमशः ये अप्रिय बातें हमें सह्य हो जाती हैं, पर सच पूछिये तो ये हमें अच्छी नहीं लगतीं।

मैंने कहा—अब हमारा अनुमान ग़लत निकला। हमें स्वाधीन इच्छा के शासन के स्थान पर नियम का अन्ध शासन दिखायी पड़ता है। आलोचना की कसौटी पर यह संसार इच्छा-सम्पर्क-विहीन प्रतीत होता है। परन्तु जबतक हमारे हृदय में आनन्द और इच्छा विद्यमान

है, तबतक हम इस संसार के भीतर भी उसे अनुभव करेंगे। उसके अपनी प्रकृति के अन्तरतम स्थान पर प्रतिष्ठित होने की यदि कल्पना न करें तो हम अपनी अन्तरतम प्रकृति के ऊपर अत्याचार करेंगे। हमारे भीतर सम्पूर्ण नियमों का जो एक व्यतिक्रम देखा जाता है, संसार में उसका कोई मूल आदर्श नहीं, इस बात से सहमत होने के लिये हमारी अन्तरात्मा तैयार नहीं होती। इसीप्रकार हमारे प्रेम को भी विश्वप्रेम की विशेष जरूरत नहीं पड़ती।

पवन ने कहा—जड़ प्रकृति के नियम की दीवार सभी जगह दृढ़, प्रशस्त और अभ्रभेदी है। मानव प्रकृति के भीतर बीच में एक छेद निकल आया है। वहीं दृष्टि केन्द्रित कर हमने एक आश्चर्यजनक आविष्कार किया है। दीवार के उसपार एक अनन्त विस्तृत क्षेत्र है। उसका और हमारा संयोग उस छोटे से छेद के जरिये है। स्वाधीनता, सुन्दरता, प्रेम, आनन्द सभी उसके भीतर से प्रवाहित होते है। इसीलिये इस सौन्दर्य और प्रेम को बाँध रखनेवाला कोई विज्ञान अभी नहीं इज़ाद हुआ है।

इसी समय निर्झरिणी पवन से बोली—उस दिन तुम लोग प्रकाशवर्ता की पियानो गाइडिंग कॉपी तलाशते थे, वह तुम्हें उपलब्ध नहीं हुई। जानते हो, उसकी क्या हालत हुई है?

पवन—नहीं तो।

निर्झरिणी ने कहा—एक चूहे ने उसे कुतरकर पियानो के तार पर छितरा दिया है। इस अनिष्ट साधन से न जाने उस चूहे को क्या लाभ हुआ है।

पवन ने कहा—यह चूहा अपने कुल में शायद बड़ा भारी साइन्स-दाँ है। चिरकाल के अनुसन्धान के बाद उसने वाद्ययन्त्र के साथ इस

वाद्यपुस्तिका का एक सम्बन्ध अनुमान किया है। रातभर उसने यही परीक्षा जारी रखी है। उसने अल्काल उद्योग किया है । दण्डाग्र भाग के द्वारा इस वाद्यपुस्तिका का क्रमागत विश्लेषण किया है। पियानो के तार के साथ उसे संलग्न करके देखा है। अभी उसने वाद्यपुस्तिका को कुतरा है, फिर पियानो के तार को कुतरेगा। आखिर में वाद्ययन्त्र में लाखों सुराख करके उनमें अपनी नाक और विचित्र कौतूहल को प्रवेशकर देखेगा कि इसमें क्या रहस्य है। फलस्वरूप संगीत भी रहस्यमय होता जायगा। मेरे मन में तर्क का तूफ़ान उठता है कि मूस-कुल तिलक ने जो उपाय अपनाया है, उससे तार और काग़ज़ के उपादान के बारे में कोई नया तत्व भले ही इज़ाद हो जाये, लेकिन तार के साथ काग़ज़ का जो समम्बन्ध है, हजारों वर्ष के प्रयास से भी वह प्रकट नहीं हो सकता है। आखिर में संशयपरायण नये मूसों के मन में क्या यह तर्क नहीं उठेगा कि काग़ज़ केवल काग़ज़ है। उसके साथ तार का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। ज्ञानी जीवों के प्रयास से उनके काग़ज़ और तार के भीतर जो आनन्दजनक उद्देश्य बन्धन लग गया है, वह प्राचीन हिन्दुओं का एक युक्तिहीन संस्कार है। उस संस्कार का एक सुफल यह देखने में आता है कि उसी के अनुसन्धान में प्रवृत्त होने पर तार और काग़ज़ को आपेक्षिक कठिनाई के विषय में बहुत कुछ परीक्षा पूर्ण हो जाती है।

लेकिन किसी दिन जब वह बिल बनाने में दाँतों को इस्तेमाल करता रहता है, तब बीच-बीच में संगीत की ध्वनि कानों में प्रवेश करती है और हृदय पर पलभर के लिये मोह का जाल फैला देती है। इसका क्या कारण है ?

वास्तव में वह एक रहस्यपूर्ण बात है। लेकिन वह रहस्य, काग़ज़ और तार के बारे में अनुसन्धान करते समय अपने आप सैकड़ों छेदों की शकल में प्रकट हो जायगा।

हमारे नये प्रकाशन

गीतांजलि

[तृतीय संस्करण]

लेखक: —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बङ्ग भाषा का यह वही ग्रन्थ है जिसके कारण विश्व साहित्य में भारत का नाम बढ़ा था, और इसके भावों पर मुग्ध होकर दीन-बन्धु एंड्र्यूज ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद करवाथा था और पाश्चात्य विद्वानों ने सर्व सम्मति से संसार का सर्वश्रेष्ठ नोवेल पुरस्कार इस पुस्तक पर दिया था। संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में इस ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाशित होचुका है। हिन्दी भाषा में यह मूल ग्रन्थ का सुबोध एवम् प्रामाणिक अनुवाद है। सुन्दर छपाई, दो रङ्गा कवर मूल्य १।) मात्र।

अभिनन्दन-ग्रन्थ

[नवीन संस्करण]

स० राम सिंहासन सहाय 'मधुर'

इस पुस्तक में हिन्दी साहित्य के चोटी के विद्वानों के उच्च कोटि के लेखों का संग्रह किया गया है। लेख सूची जैसे :—प्राचीन भारत के प्रजातन्त्र राज्य, आधुनिक राजनैतिक सिद्धान्त, भोजपुरी भाषा और साहित्य, भोजपुरी के क्रान्तिकारी कवि, भोजपुरी लोक गीत आदि। उसी प्रकार लेखक सूची जैसे:—राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, आसाम के गवर्नर श्री श्री प्रकाश जी, डाक्टर अ० स० अलतेकर हिन्दू-विश्वविद्यालय डाक्टर उदय नारायण तिवारी इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, श्री रामकुमार वर्मा, डाक्टर राम विचार पांडे, राय दुर्गादत्त सिंह आदि उच्च कोटि के विद्वानों के उच्च कोटि के लेखों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। सुन्दर छपाई पक्की जिल्द मूल्य २॥) मात्र।

गृह-दाह

[नवीन संस्करण]

ले०—शरच्चन्द्र चटर्जी

भारतीय भाषाओं में बङ्ग भाषा का साहित्य सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसका श्रेय उपन्यास सम्राट स्व० शरच्चन्द्र चटर्जी को है। शरद बाबू के विषय में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। शरद बाबू ने कई दर्जन उपन्यास लिखे हैं। किन्तु उनकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण गृह-दाह ही हुआ है। इसकी उपयोगिता का अनुपम आप इसी से लगा सकते हैं कि संसार की प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ है। और इसका चलचित्र भारत के नगरों की जनता का सफलता पूर्वक मनोरंजन कर रहा है। सुन्दर छपाई, सजिल्द, दो रङ्गा आवरण, मूल्य ४) मात्र।

टाम काका की कुटिया

[नवीन संस्करण]

ले०—चंडी चरण सेन

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि "टाम काका की कुटिया" जैसी क्रान्तिकारी पुस्तक श्री गान्धी ग्रन्थागार द्वारा प्रकाशित हो रही है। इसके लगभग १५ फार्म छप गये हैं, शेष फार्म शीघ्र ही छप रहे हैं। पुस्तक लगभग ६०० पृष्ठों में समाप्त हो रही है। पुस्तक बड़ी है, अतः सीमित संख्या में छप रही है। आप अपना आर्डर पहिले ही बुक करा लें। इस पुस्तक के विषय में हिन्दी के ख्यातिनामा लेखक एवम् स्वतन्त्र विचारक स्वर्गीय पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि "इस पुस्तक का अमेरिका में सैकड़ों संस्करण छप चुके हैं। पहले संस्करण में लगभग तीन लाख प्रतियाँ छपी थीं। जो हाथोंहाथ बिक गयीं।" आदर्श छपाई, पक्की जिल्द, दो रङ्गा आवरण पृष्ट, मूल्य ६॥) मात्र।